Digitized by Madhuban Trust, Delhi

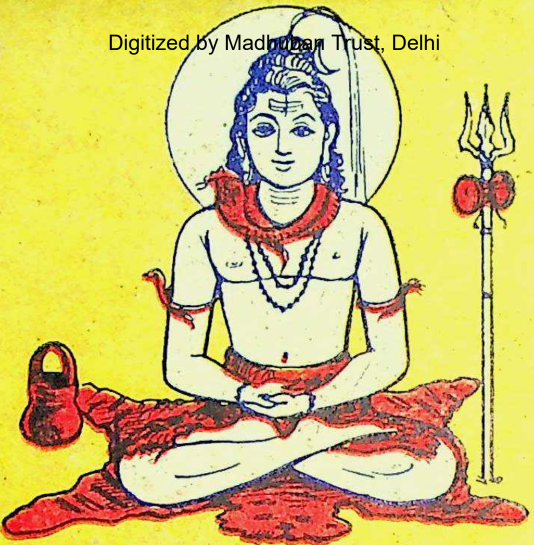

बृहद् शिव स्वरोदय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहत् शिवस्वरोदय

(शिव-पार्वती सम्वाद एवं सरल टीका सहित)

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

रचयिता : मन्त्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, वैदिक मन्त्र विद्या, प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, शिवरहस्य, देवरहस्य, विष्णुरहस्य ओंकार सिद्धि, मन्त्र योग, मन्त्र शक्ति से रोग निवारण-विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि, श्रीमद्-भागवत् सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण, तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, तन्त्र महाविद्या, तन्त्र महासिद्धि.

प्राप्तिस्थान :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली—२४३००१ (उ० प्र०)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रकाशक :

लोकहित संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली २४३००१ (उ. प्र.)

★

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

★

सर्वाधिकार संस्कृति संस्थान
बरेली के आधीन

★

द्वितीय संस्करण
१९७५

★

मुद्रक :
देवदत्त मिश्र
यमुना प्रिन्टिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा।

★

मूल्य :
तीन रुपये पिचहत्तर पैसे मात्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भूमिका

भारतीय विद्याओं में स्वर विद्या का अत्यन्त महत्व है, परन्तु इस विषय पर अधिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं और जो उपलब्ध हैं भी, उनमें 'शिव स्वरोदय' नामक यह ग्रन्थ अपनी विशेषता रखने के कारण लोक में प्रसिद्ध है। इसका कारण श्रद्धालुजनों की श्रद्धा ही नहीं, वरन् ग्रन्थ की अपनी उपयोगिता भी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित विधियों से सर्व कार्यों की सिद्धि होने वाले निर्देश के प्रति पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित शिक्षित पुरुष उपेक्षा और तिरस्कार की भावना प्रकट करते हैं और उन्हें कपोल कल्पित मान कर हँसी उड़ाते हैं। परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि भारतीय संस्कृति में ऐसे-ऐसे चमत्कार भरे पड़े हैं, जो अनुभव में आने से पूर्व असम्भव ही प्रतीत होते हैं। परन्तु जब उनका प्रत्यक्ष देखना सम्भव होता है, तब उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। इस प्रकार इस ज्ञान की यथार्थता अनुमान से नही, अनुभव से ही सिद्ध हो सकती है।

रामायण में सीताजी की खोज के लिये हनुमानजी द्वारा उड़ कर समुद्र पार किया जाना निश्चय ही स्वर योग की करामात थी। योग शास्त्रों में खेचरी विद्या के द्वारा आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होने का प्रयोग कोई नया नहीं है। जल पर चलना, हवा में उड़ना, अग्नि में प्रविष्ट होना आदि ऐसे कार्य हैं, जो योग के द्वारा पूर्णरूप से सम्भव हैं।

त्रेता युग में मनुष्यों की आर्य, अनार्य और वनार्य संज्ञक तीन जातियाँ प्रमुख रूप से थी। इन तीनों की संस्कृति में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इतनी भिन्नता थी कि जिसके कारण पारस्परिक अलगाव की खाई बहुत चौड़ी हो रही थी, जिसका पाटना कभी सम्भव प्रतीत नहीं होता था। परन्तु भगवान् श्रीराम ने उस खाई के पाटने का अत्यधिक प्रयास किया था। वह चाहे सहज रूप से हुआ अथवा विवशता से, उन्होंने सुग्रीव से मित्रता कर वनार्य जाति को अपने-स्नेह-बन्धन में ऐसा जकड़ लिया कि वह शीघ्रता से उनके निकट, अत्यन्त निकट होती चली गई। इसलिए राम-रावण युद्ध में वनार्यों ने आर्यों का साथ दिया था।

उस समय वनार्यों का राजा बालि था, जिसका उसी के भाई सुग्रीव के द्वारा वध करा कर श्रीराम ने अपना वचन-पालन और मित्रता का निर्वाह किया था। तत्पश्चात् किष्किधा का राज्य सुग्रीव को मिला, परन्तु उसकी वनार्य सेना का नेतृत्व हनुमान ही करते थे। कुछ विद्वान् उन्हें मनुष्य न मान कर बन्दर जाति में उत्पन्न मानते हैं, परन्तु यथार्थ यही है कि वे वन में रहने वाली आर्य जाति में ही उत्पन्न हुए थे, ऐसा आजकल के अनेक विद्वान स्वीकार करते हैं।

हनुमानजी परम योगाभ्यासी थ, उन्हें स्वरोदय का ज्ञान भी अत्यधिक था। कुछ विद्वानों के अनुसार तो स्वरोदय का प्रवर्तन ही उन्होंने किया था। उनके द्वारा किये गये अनेकों चमत्कारी कार्य स्वरयोग की परिधि में ही आते हैं। लक्ष्मणजी को शक्ति लगने पर हनुमानजी का संजीवनी बूटी लेने के लिए जाना और बूटी न पहचानने के कारण उस पर्वत-खण्ड को ही उठा लाना भी एक ऐसी घटना थी, जिसे स्वर योगी ही भले प्रकार करने में समर्थ हो सकता है क्योंकि स्वर योग में ही इतनी सामर्थ्य हो सकती है जिसके आश्रय से हनुमानजी ने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। वह स्वरयोग के प्रबल साधक थे। इसलिए उन्हें पवनपुत्र कहा जाता था।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण काल में एक हनुमानजी ही क्यों अनेक ऋषि, महर्षियों को भी स्वरोदय का ज्ञान और अभ्यास प्रबल रूप में था, जिसके बल से जो कुछ भी शुभ-अशुभ, सम्भव-असम्भव कह देते, वह सत्य ही सिद्ध होता था। महर्षि परशुराम, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि सभी को न्यूनाधिक रूप से स्वरयोग का ज्ञान था और उसी के बल पर वे अकेले ही सब कुछ करने में समर्थ थे। उन्हें अपने किसी कार्य में किसी दूसरे की सहायता अपेक्षित नहीं थी।

यहाँ यह कथन अनुपयुक्त न होगा कि भारतीय सिद्ध विद्याओं में स्वर विद्या का अत्यन्त ही महत्व है। चमत्कारों से सम्बन्धित होने के कारण इनमें आकर्षण की भी अधिकता है। इसलिए ऐसी विद्याओं के भण्डार की श्रीवृद्धि करने और उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न किये जाने आवश्यक हैं।

स्वरयोग ऐसी वैज्ञानिक विधि है, जिसके द्वारा सूर्य, चंद्र आदि ग्रहों को शरीर में स्थित सूक्ष्म नाड़ियों की सहायता से यदि अपने अनुकूल बना लिया जाय तो संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं रह जाता, जिसे असम्भव कहा जासके। उन सभी सूक्ष्म नाड़ियों का पता सर्व प्रथम भारतीय योगियों ने ही लगाया और धीरे-धीरे उनकी अनुकूलता प्राप्त करके शरीर और आत्मा में दिव्य शक्ति भरली। वह परम्परा जब तक ठीक प्रकार से चलती रही, तब तक भारत का ऐश्वर्य अत्यन्त उन्नत रहा।

प्राचीन ऋषियों ने स्वर योग का दिव्य एव महत्वपूर्ण होना प्रमाणित कर दिखाया, क्योंकि इसकी खोज दिव्य नेत्रों से ही की गई थी। इसलिए वर्तमान में इस विद्या का कितना ही ह्रास क्यों न होगया, परन्तु यह स्वीकार करना होगा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कि यह विद्या कभी मिट नहीं सकती। अमर रही है और अमर ही रहेगी।

इस विद्या के आदि आविष्कारक भगवान् शिव हैं, इसीलिए इसका नाम 'शिवस्वरोदय' हुआ। स्वयं शिवजी ने पार्वतीजी से कहा कि इस स्वरोदय में किसी प्रकार के कुयोग की आशंका नहीं रहती और इसकी सहायता से सभी बिगड़ते हुए कार्य बन जाते हैं। उन्होंने इस शास्त्र को सभी शास्त्रों, पुराणों, इतिहासों स्मृतियों और यहाँ तक कि वेद-वेदांगों से भी श्रेष्ठ तथा गुप्त से गुप्त वस्तुओं का प्रकाशक कहकर इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला था।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्णनानुसार इस शास्त्र का प्रणयन भगवती पार्वतीजी की उत्कण्ठा और उसके समाधान स्वरूप शिव-पार्वती के सम्वाद रूप में हुआ है और इसमें जो तत्वज्ञान भरा पड़ा है, वह लोकोपकारार्थ अत्यन्त उपयोगी एवं महत्पूर्ण है क्योंकि यह ज्ञान भौतिक और आध्मात्मिक दोनों ही दृष्टियों से कल्याणकारी है।

प्रमुख रूप से इस ग्रन्थ में पंचतत्व, स्वर, प्राणवायु, नाड़ी, प्राणायाम, काल, संख्या तथा रोग आदि के ज्ञान के साथ योग की सामान्य विधि के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के साधनों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसके कि साधक और ज्ञानाकांक्षी पुरुषों को क्षुद्र और वृहद् सभी प्रकार के कार्यों में सफलता, योग-सिद्धि, स्वर-सिद्धि, तत्व साक्षात्कार एवं अमरत्व प्राप्ति के उपाय आदि गूढ़ातिगूढ़तम विषयों की जानकरी सुलभ है।

यथार्थ में तो कल्याणकारी वही है, जिसके गुणों की प्रत्यक्षता हो। अन्यथा जो भी वस्तु छिपी हुई रहती हैं, वे सर्व साधारण के किसी उपयोग में न आने से व्यर्थ ही होती हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसलिए किसी भी ज्ञान का गुप्त रहना शोक के लिए हितकर नहीं हो सकता ।

इस ज्ञान के अभ्यास और अनुभव द्वारा बहुत से लोगों ने अपना और पराया जो उपकार किया, वह वास्तव में जनकल्याण में एक प्रशंसनीय योग था । अनेकों ऋषि-महर्षि इसी ज्ञान के प्रभाव से ससार को आकर्षित करते रहे । उनके ज्ञान की शक्ति को मरणधर्मा प्राणियों ने ही नहीं, देवताओं और दैत्यों तक ने अपूर्व स्वीकार किया । वे ऋषि-मुनि स्वरज्ञान के अनुभव के आधार पर ही शास्त्र-मर्मज्ञ होगए थे ।

पौराणिक युग में इस शास्त्र का अत्यधिक उपयोग होता था । दैत्यों द्वारा कि जाने वाले अत्यन्त शक्तिशाली और चमत्कारिक प्रदर्शन इसी ज्ञान की देन थे । सर्व साधारण जन भी इसके द्वारा अभूतपूर्व लाभ उठाते थे । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यह चारों पदाथ ही लोक में अत्यन्त आकाँक्षा और परम जिज्ञासा के विषय होते हैं, जिनकी प्राप्ति इस विद्या के द्वारा पूर्णरूपेण सम्भव है ।

इसकी शक्ति के विषय में यह कहा जाना अनुपयुक्त नहीं है कि इससे आस्तिकों को तो सिद्धियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते ही हैं, नास्तिकों को भी विभिन्न प्रकार के चमत्कार दिखाई देने लगते हैं, जिससे वे भी आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहते और अन्त में, आस्तिक, नास्तिक सभी इसकी शक्ति को स्वीकार कर लेते हैं ।

यह विद्या अपने अभ्यास में परिश्रम की अपेक्षा रखती है । आलसी या उपेक्षाभाव वाले साधक इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकते । विषयासक्त और जगत् प्रपंच में फँसे हुए लोगों की साधना भी सफल नहीं होती, क्योंकि इसकी उपलब्धि उन्हीं को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कि यह विद्या कभी मिट नहीं सकती। अमर रही है और अमर ही रहेगी।

इस विद्या के आदि आविष्कारक भगवान् शिव हैं, इसीलिए इसका नाम 'शिवस्वरोदय' हुआ। स्वयं शिवजी ने पार्वतीजी से कहा कि इस स्वरोदय में किसी प्रकार के कुयोग की आशंका नहीं रहती और इसकी सहायता से सभी बिगड़ते हुए कार्य बन जाते हैं। उन्होंने इस शास्त्र को सभी शास्त्रों, पुराणों, इतिहासों स्मृतियों और यहाँ तक कि वेद-वेदांगों से भी श्रेष्ठ तथा गुप्त से गुप्त वस्तुओं का प्रकाशक कहकर इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला था।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्णनानुसार इस शास्त्र का प्रणयन भगवती पार्वतीजी की उत्कण्ठा और उसके समाधान स्वरूप शिव-पार्वती के सम्वाद रूप में हुआ है और इसमें जो तत्वज्ञान भरा पड़ा है, वह लोकोपकारार्थ अत्यन्त उपयोगी एवं महत्पूर्ण है क्योंकि यह ज्ञान भौतिक और आध्मात्मिक दोनों ही दृष्टियों से कल्याणकारी है।

प्रमुख रूप से इस ग्रन्थ में पंचतत्व, स्वर, प्राणवायु, नाड़ी, प्राणायाम, काल, संख्या तथा रोग आदि के ज्ञान के साथ योग की सामान्य विधि के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के साधनों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसके कि साधक और ज्ञानाकांक्षी पुरुषों को क्षुद्र और वृहद् सभी प्रकार के कार्यों में सफलता, योग-सिद्धि, स्वर-सिद्धि, तत्व साक्षात्कार एवं अमरत्व प्राप्ति के उपाय आदि गूढ़ातिगूढ़तम विषयों की जानकरी सुलभ है।

यथार्थ में तो कल्याणकारी वही है, जिसके गुणों की प्रत्यक्षता हो। अन्यथा जो भी वस्तु छिपी हुई रहती हैं, वे सर्व साधारण के किसी उपयोग में न आने से व्यर्थ ही होती हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसलिए किसी भी ज्ञान का गुप्त रहना शोक के लिए हितकर नहीं हो सकता ।

इस ज्ञान के अभ्यास और अनुभव द्वारा बहुत से लोगों ने अपना और पराया जो उपकार किया, वह वास्तव में जनकल्याण में एक प्रशंसनीय योग था। अनेकों ऋषि-महर्षि इसी ज्ञान के प्रभाव से ससार को आकर्षित करते रहे। उनके ज्ञान की शक्ति को मरणधर्मा प्राणियों ने ही नहीं, देवताओं और दैत्यों तक ने अपूर्व स्वीकार किया। वे ऋषि-मुनि स्वरज्ञान के अनुभव के आधार पर ही शास्त्र-मर्मज्ञ होगए थे ।

पौराणिक युग में इस शास्त्र का अत्यधिक उपयोग होता था। दैत्यों द्वारा कि जाने वाले अत्यन्त शक्तिशाली और चमत्कारिक प्रदशन इसी ज्ञान की देन थे। सर्व साधारण जन भी इसके द्वारा अभूतपूर्व लाभ उठाते थे। धर्म, अर्थ, काम और माक्ष, यह चारों पदाथ ही लोक में अत्यन्त आकाँक्षा और परम जिज्ञासा के विषय होते हैं, जिनकी प्राप्ति इस विद्या के द्वारा पूर्णरूपेण सम्भव है ।

इसकी शक्ति के विषय में यह कहा जाना अनुपयुक्त नहीं है कि इससे आस्तिकों को तो सिद्धियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते ही हैं, नास्तिकों को भी विभिन्न प्रकार के चमत्कार दिखाई देने लगते हैं, जिससे वे भी आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहते और अन्त में, आस्तिक, नास्तिक सभी इसकी शक्ति को स्वीकार कर लेते हैं ।

यह विद्या अपने अभ्यास में परिश्रम की अपेक्षा रखती है। आलसी या उपेक्षाभाव वाले साधक इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। विषयासक्त और जगत् प्रपंच में फँसे हुए लोगों की साधना भी सफल नहीं होती, क्योंकि इसकी उपलब्धि उन्हीं को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हो सकती है, जो लोक कल्याण के लिए और परम पद प्राप्ति के लिए सभी कुछ त्याग चुके हैं।

स्वरोदय-ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण तो है ही, साथ ही सद्यः चमत्कारी भी है। इसमें सभी छोटी-बड़ी सिद्धियाँ निहित हैं, और साथ ही मोक्षमार्ग का भी सरल-सहज उपदेश निहित है। शकुन, शुभाशुभ ज्ञान, आत्मकल्याण, विष-शमन, रोग-निवारण आदि साधारण सिद्धियाँ भी इसके द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। आज अनेक लोग इसके आश्रय से खोई हुई वस्तु का पता बताने, बाजार की तेजीमन्दी बताने, मूक प्रश्नों का उत्तर देने आदि में लगे रहकर धन और यश का अर्जन करते हैं। परन्तु अधिक उच्चकोटि की सिद्धियों का प्रदर्शन करने में वर्तमान स्वरज्ञानी प्रायः समर्थ नहीं हैं।

रामायण काल में अपनी अत्यधिक उन्नत दशा में रहने वाला यह ज्ञान धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त होता गया। इसके साधक कम होते गये और फिर यह सभी को सुलभ नहीं रह सका। परिणाम यह हुआ कि लोग इस ज्ञान के चमत्कारों को भूलने लगे और आज वह कुछ अत्यन्त साधारण सिद्धियों तक ही सीमित रह गया।

स्वरोदय ज्ञान के साधकों की कमी हुई सो तो हुई, परन्तु इसके जानने वालों का ही अभाव-सा हो गया। जो कुछ इने-गिने लोग दिखाई देते हैं, वे साधारण और तुच्छ सिद्धियों तक ही सीमित रह गए। अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्ष रूप में जो स्वर-साधक मिलते हैं, उनका ज्ञान साधारण कोटि का ही है। अवश्य ही उत्कृष्ट ज्ञान से समन्वित और सुदृढ़ अभ्यासी स्वर योगी भी संसार में होंगे, परन्तु उन तक जन-साधारण की पहुंच नहीं हो पाती।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रस्तुत ग्रन्थ शिवस्वरोदय का वृहद् संस्करण है, जो कि उपलब्ध पुस्तक की अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं वृहद् है। इसके पूर्वार्द्ध में उपलब्ध श्लोकों का सरल टीका के सहित समावेश किया गया है और उत्तरार्द्ध में स्वर योग की सभी मान्यताओं, स्वास्थ्य विषयक प्रश्नोत्तरों का विवेचन, पंचतत्वों का स्वरूप और शुभाशुभ फल वर्णन, तत्वों में ग्रह-नक्षत्रों का स्थान तत्वों के बीजमन्त्र और आकार, षण्मुखी मुद्रा, वायुओं का नाड़ी से सम्बन्ध स्वरयोग से रोगों का निवारणादि तथा अन्त में स्वरयोग के साधनों और कुण्डलिनी यागादि पर विभिन्न उपनिषद् आदि के उद्धरणों सहित प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि इस ग्रन्थ का प्रामाणिक रूप में मिलना अत्यन्त ही कठिन था। अब तक इसकी जितनी भी प्रतियाँ मिली, वे सब अपूर्ण थीं। परन्तु हमने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक और बहुत खोज-बीन के पश्चात् एवं विज्ञ स्वर साधकों के साहचर्य से जो ज्ञान संचय किया, उसे ठीक प्रकार से सम्पादन कर विद्वान् पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। इसमें संस्कृत के मूल श्लोकों का सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में अनुवाद करते हुए श्लोकों के भाव को अक्षुण्ण रूप से व्यक्त करने का पर्ण प्रयत्न किथा गया है। इसलिए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि इस अप्राप्य ग्रन्थ-रत्न को मूल संस्कृत के प्रामाणिक श्लोकों और उनकी श्रेष्ठ टीका के सहित प्रस्तुत करने में हम पूर्ण सफल हो रहे हैं।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह प्रयत्न स्वरसाधकों, ज्योतिषियों और योगाभ्यासी जनों के लिए भी अत्यन्त हितकर सिद्ध होगा और ऐसा होने पर ही हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—सम्पादक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध —

मंगलाचरण	१७
ज्ञान विज्ञयक प्रश्न	१७
ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन	१८
स्वरों से त्रिकाल ज्ञान	१९
शिष्य लक्षण कथन	२०
स्वरज्ञान से सर्वज्ञता प्राप्ति	२०
स्वरबल से शत्रुजय	२२
स्वरोदय शास्त्र की श्रेष्ठता	२३
स्वरबल से शुभफल का प्राप्ति	२३
नाड़ियों की संख्या	२४
नाड़ियों को गति का वर्णन	२४
नाड़ियों के स्थान	२५
वायुओं के भेद एवं स्थान	२६
नाड़ियों की त्रिवेणी	२७
जीव के स्थैर्य में इष्ट सिद्धि	२८
इडा नाडी की अमृतरूपता	२९
अहोरात्र में चन्द्रसूर्य की आबृत्तियाँ	३०
चन्द्र स्वर में सूर्योदय का फल	३१
नाड़ियों में पंचतत्वों का उदय	३२
सूर्य प्रवाह में गमन के लिए निषिद्ध दिशाएँ	३३
सूर्योदय में सूर्य स्वर से कार्य सिद्धि	३३
विपरीत स्वरों का फल कथन	३४
जयलाभ का लक्षण	३५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वर प्रवाह वाले अङ्ग को आगे करना	३६
पूर्ण हाथ से शुभ कार्यों की सिद्धि	३६
रिक्त हाथ से निग्रह कार्यों की सिद्धि	३७
दूरमार्ग गमन में चन्द्र स्वर की श्रेष्ठता	३८
इडा नाड़ी का फल कथन	३९
पिंगला नाड़ी का फल कथन	४१
सुषुम्ना नाड़ी का फल कथन	४३
विपरीत स्वर संचार में ईश्वर स्मरण	४४
सन्ध्या का स्वरूप वर्णन	४६
पार्वती का रहस्य विषयक प्रश्न	४७
शिव द्वारा समाधान का आरम्भ	४७
अष्टधा तत्वज्ञान कथन	४८
सदा स्वरावलोकन कर्त्तव्य	४९
आकर दर्शन से तत्तज्ञान	५०
स्थान परत्व से तत्तज्ञान	५१
स्वाद से तत्वज्ञान	५१
गति से तत्वज्ञान	५१
तत्वों के विभिन्न फल	५२
आकाश तत्व मे कार्य-निषेध	५२
पार्थिक वायु का फल	५३
वायु तत्व में चर-कार्यों की सिद्धि	५३
जल तत्व से लाभ-कथन	५४
पंचतत्वों के शुभाशुभ फल	५५
पृथिवी तत्व का विशेष फल	५६
प्रवास विषयक प्रश्नोत्तर	५७
पंचभूतात्मक देह वर्णन	५९
शरीर में पंचभूतों का अंशभाग कथन	६०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृथिवी तत्व के नक्षत्र	६१
जलतत्व के नक्षत्र	६१
तेज तत्व के नक्षत्र	६१
वायु तत्व के नक्षत्र	६१
तत्वों के बीज एवं ध्यान कथन	६२
त्रिकालज्ञान विषयक प्रश्न	६४
शिवजी द्वारा समाधान	६४
मित्र विषयक प्रश्न	६५
प्राण का मैत्रीभाव कथन	६५
वायु की स्थिति विषयक प्रश्न	६५
प्राण-प्रमाण वर्णन	६५
चन्द्रस्वर के लाभ	६७
गमन विषयक निर्देश एवं निषेध	६८
पूर्णतत्व में स्थैर्य स भूमिजय	६९
तीन नाड़ियों को तीन गति	७१
पूर्णस्वर में रक्षा, शून्य स्वर में घात	७२
वाम नाड़ी संचार से युद्ध में विजय	७३
पुष्पपात से फल ज्ञान	७५
यम-युद्ध में विजय विषयक प्रश्न	७७
देवध्यान से सर्वलाभ कथन	७७
वशीकरण विषयक प्रश्न	७७
स्वकीया का वशीकरण कथन	७८
चन्द्रस्वरदान से नारी वशीकरण	७८
स्त्रीवशीकरण का अन्य प्रभावशाली उपाय	७९
गर्भ प्रकरण	८०
वन्ध्या को भी पुत्र प्राप्ति	८१
अपत्य-प्राप्ति में तत्वों का विभिन्न प्रभाव	८२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संवत्सर प्रकरण	८४
मेष संक्रान्ति से काल-फल का ज्ञान	८५
अग्नितत्व क प्रवाह से दुर्भिक्ष	८५
रोग प्रकरण	८६
रिक्त नाड़ी, विषम अक्षर का विपरीत फल	८८
काल प्रकरण	८९
चन्द्राशय से अमरत्व प्राप्ति	९०
सन्निपात के पूर्व लक्षण	९२
शिव द्वारा अरिष्ट चिह्न कथन	९२
दूरस्थ काल दर्शन	९५
वर्ण-दर्शन के विभिन्न फल	९६
आयुहीनता का लक्षण	९८
इडादि को त्रिवेणी	१००
प्राणायाम ज्ञान की आवश्यकता	१०१
दीर्घजीवन का रहस्य कथन	१०१
षण्मुखीकरण वर्णन	१०२
स्वरज्ञानी को शिव सायुज्य-प्राप्ति	१०३
स्वरज्ञानी की पूजनीयता कथन	१०४
उत्तरार्द्ध :—	
स्वरयोग की मान्यताएँ	१०६
स्वरसंचार के विभिन्न फल	१०६
सूर्य और चन्द्रमा के गुणों की भिन्नता	१०८
नाड़ियों से स्वास्थ्य की परीक्षा	१०९
ब्रह्माण्ड और पिण्ड की समानता	१०९
स्वर को अनुकूल बनाने का नियम	११०
स्वरयोग का प्रारम्भिक अभ्यास	११०
अभ्यास का क्रम एवं काल	११०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पंच महाभूत या पंचतत्व	१११
स्वरपरीक्षा से तत्वज्ञान की प्राप्ति	११२
तत्वों की विभिन्नता वाले स्वरों का परिणाम	११३
मिश्रित तत्वां की अनुभूति	११३
तत्वों के वर्ण आदि का वर्णन	११४
तत्बों का पृथक्-पृथक् प्रभाव	११६
तत्वों में ग्रहों और नक्षत्रों के स्थान	११७
तत्वों के बीज मन्त्र और आकार	११८
पृथिवी तत्व	११८
जल तत्व	११९
अग्नि तत्व	११९
वायु तत्व	१२०
आकाश तत्व	१२१
तत्वों के ध्यान का फल	१२१
षण्मुखी मुद्रा	१२२
षण्मुखी मुद्रा की सुसाध्यता	१२३
वायुओं का नाड़ियों से सम्बन्ध	१२४
स्वरयोग से रोगों का निवारण	१२५
स्वर परीक्षा से रोगों का निदान	१२६
स्वर-परिवर्तन से रोग की तीव्रता का ह्रास	१२६
प्रश्न के द्वारा रोग का ज्ञान और फलाफल	१२७
रोगी के स्वर संचार से मृत्यु का ज्ञान	१२८
मृत्यु से बचने का उपाय	१२९
स्वर और स्वास्थ्य	१२९
नारी-संसर्ग में स्वरादि का प्रभाव	१३०
दाम्पत्य जीवन का प्रेममय बनाने के उपाय	१३०
गर्भाधान में स्वरों की महिमा	१३२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इच्छित सन्तान की प्राप्ति	१३३
स्वर एवं तत्वों के योग से सन्तानोत्पत्ति	१३३
गर्भाधान विषयक प्रश्न और निष्कर्ष	१३६
पूर्णांग-रिक्तांग का वर्णन	१३७
पूर्णांग-रिक्तांग की परीक्षा	१३५
कालांग का वर्णन	१३८
पूर्णांग-रिक्तांग से रोग के शुभाशुभ फल का ज्ञान	१३९
स्वरसाधक के लिए प्रणवजाप का महत्व	१४०
स्वरयोग के साधन	१४१
विरक्त पुरुषों की महिमा	१४३
कल्याण का एकमात्र साधन	१४४
योगसिद्धि के विभिन्न फल	१४५
अष्ट सिद्धियाँ	१४५
अष्ट ऐश्वर्य, चौंसठ गुण	१४७
योगाभ्यास से सर्व ऐश्वर्यों की सिद्धि	१४९
ब्रह्मज्ञान क्या है ?	१५०
कुण्डलिनी योग	१५२
षट्चक्र वर्णन	१५२
कुण्डलिनी जागरण	१५४
योग के प्रमुख भेद और अवस्थाएँ	१५५
यमादि का लक्षण	१५७
प्रत्याहार का वर्णन	१५८
धारणा का वर्णन	१५८
ध्यान का वर्णन	१५९
समाधि का वर्णन	१६०
योगाभ्यास में विघ्नों की उपस्थिति	१६०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अणिमादि सिद्धियों के रूप में विघ्न	१६१
अजपा गायत्री	१६२
शरीर में आत्म-दर्शन	१६३
चित्त वृक्ष के दो बीज	१६४
चित्त के नाश से ही मोक्ष की प्राप्ति	१६५
रुद्राक्ष धारण से सर्वश्रेय सिद्धि	१६६
त्याज्य और ग्राह्य रुद्राक्ष	१६७
रुद्राक्ष धारण में सख्या-निर्देश	१६८
रुद्राक्षों के प्रकार	१६९
रुद्राक्षों के मुख और उनकी महिमा	१७०
रुद्राक्ष-धारण का फल	१७२
योगियों के अरिष्ट चिह्नों का वर्णन	१७३
आवागमन की निवृत्ति का निर्णय	१७५
ग्रन्थपाठ का फल और समाप्ति	१७६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहत् शिवस्वरोदय

पूर्वार्द्ध

मंगलाचरण

महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम् ।
गुरुं च परमात्मनं भजे संसारतारणम् ।।१

शिवजी, पार्वतीजी और गणेशजी को नमस्कार करता हुआ मैं संसार से उद्धार करने वाले सद्गुरु और परमात्मा का भजन करता हूँ ।।१।।

ज्ञान विषयक प्रश्न

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ।।२

पार्वतीजी बोलीं—हे देवदेव महादेव ! आप मेरे प्रति सभी सिद्धियों को प्राप्त कराने वाले श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करने की कृपा करिये ।।२।।

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम् ।।३

हे देव ! यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ ? इसका परिवर्तन क्यों होता है ? कैसे इसका विलय होता है, इस प्रकार ब्रह्माण्ड का निर्णय मेरे प्रति कहिए ।।३।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्वेन परिवर्तते ।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद्ब्रह्माण्डनिर्णयः ।।४

शिवजी ने कहा हे देवि ! इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तत्वों से हुई है, तत्वों से ही इसका परिवर्तन और विलय होता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का निर्णय तत्वों से ही समझो ।।४।।

तत्त्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः ।
तत्त्वस्वरूपं किं देव तत्त्वमेव प्रकाशय ।।५

पार्वतीजी ने कहा—हे देव ! तत्ववादियों का निश्चय है कि ब्रह्माण्ड का मूल तत्व ही है. तो उन तत्वों का क्या स्वरूप है यह मुझे बताइये ।।५।।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन

निरञ्जना निराकार एको देशो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसंभवः ।।६

शिवजी बोले—निरंजन, निराकर महेश्वर एक ही देव है, उनसे आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई ।।६।।

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः ।
एतानि पञ्चतत्वानि विस्तीर्णानि च पंचधा ।।७

वायु से तेज. तेज से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। इस प्रकार यह पाँचों तत्व इस संसार में विस्तार को प्राप्त होते हैं ।।७।।

तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ।।८

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन्हीं से ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है, इन्हीं से पालन होता है और फिर प्रलयकाल आने पर ब्रह्माण्ड इन्हीं में लीन हो जाता है ।।८।।

पञ्चतत्त्वये देहे पञ्चातत्त्वानि सुन्दरि ।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्तेतत्त्वयोगिभिः ।।९

हे सुन्दरि ! पाँच तत्वों से उत्पन्न हुए शरीर में यह पाँचों तत्व सूक्ष्मरूप से विद्यमान रहते हैं, परन्तु उसका ज्ञान तत्व-वेत्ताओं को ही होता है ।।९।।

स्वरों से त्रिकाल ज्ञान

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्थस्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम् ।।१०

अब शरीर में स्थित आकारादि स्वरों के उच्चारण में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख स्वरों को कहता हूँ, जिनके ज्ञान से हंस-चार स्वरूप से त्रिकाल का ज्ञान होता है ।।१०।।

गुह्याद्गुह्यतरं सारमुपकारप्रकाशनम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणिः ।।११

गुह्य से भी परम गुह्य सार और लाभ को व्यक्त करने वाला यह स्वरोदय ज्ञान सभी ज्ञानों के मस्तक परअलंकृत मणि के समान है ।।११।।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोध सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारंत्वास्तिकेजने ।।१२

यह स्वरोदय ज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते हुए भी जानने में सुबोध और सत्य की प्रतीति को कराने वाला है । नास्तिकों को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो यह आश्चर्य प्रतीत होता है, परन्तु आस्तिक पुरुषों के लिए आधार स्वरूप है ॥१२॥

शिष्यलक्षण कथन

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।
दृढ़चित्ते कृतज्ञे च देयं चैव स्वरोदयम् ॥१३

शिष्य का लक्षण यह है कि वह शान्त, शुद्ध, सदाचारी, गुरु-भक्त, दृढ़ चित्त और कृतज्ञ हो। ऐसे शिष्य को ही स्वरोदय का ज्ञान दे ॥१३॥

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे ।
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ॥१४

दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, गुरुतल्पगामी, बलहीन और दुराचारी को स्वरज्ञान नहीं देना चाहिए ॥१४॥

स्वरज्ञान से सर्वज्ञता प्राप्ति

शृणु त्वं कथितं देवि देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ॥१५

हे देवि ! शरीर में रहने वाले इस श्रेष्ठ ज्ञान को कहता हूँ, तुम श्रवण करो। इसके जान लेने मात्र से ही सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥१५॥

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम् ।
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥१६

स्वर में ही वेद, स्वर में ही शास्त्र और स्वर में ही श्रेष्ठ गान्धर्व विद्या (संगीतादि) है तथा स्वर में ही यह सम्पूर्ण त्रिलोकी बसी है और स्वर ही आत्मस्वरूप है ॥१६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम् ।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनं च यद्वपुः ॥१७

स्वरज्ञान से रहित ज्योतिषी, स्वामी से विहीन गृह, शास्त्र से विहीन मुख और शिर से विहीन शरीर (व्यर्थ ही) हैं ॥१७॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च ।
सुषुम्नामिश्रभेदं च यो जानाति समुक्तिगः ॥१८

नाड़ीभेद, प्राणतत्व के भेद और सुषुम्ना आदि तीन मिश्रित नाड़ियों के भेद को जो पुरुष जानता है, वह श्रेष्ठ मुक्ति को प्राप्त होता है ॥१८॥

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृतम् ।
कथयन्ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ॥१९

हे वरानने ! कुछ विद्वानों के कथनानुसार साकार या निराकार शुभ वायु के बल से स्वर का ज्ञान प्राप्त करना शुभ होता है ॥१९॥

ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः ।
सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥२०

ब्रह्माण्ड के खण्ड और पिण्डादि स्वर के द्वारा ही निर्मित हैं तथा सृष्टि और संहार करने वाला साक्षात् महेश्वर भी शिव ही है ॥२०॥

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम् ।
स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं नवा दृष्टं नवा श्रुतम् ॥२१

स्वरज्ञान से परम गुह्य, स्वरज्ञान से परमधन, और स्वरज्ञान से परम ज्ञान न तो देखा गया और न सुना ही गया ॥२१॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरबल से शत्रुजय

शत्रुं हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमः ।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम् ॥२२

स्वर के बल से ही शत्रु का हनन, मित्र का समागम, लक्ष्मी की उपलब्धि कीर्ति एव सुख की प्राप्ति होता है ॥२२॥

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम् ।
स्वरेण देवतासिद्धि स्वरेण क्षितिपो वशः ॥२३

स्वर के बल से ही कन्या-प्राप्ति, राज-दर्शन, देवता की सिद्धि और राजा का वश मे होना सम्भव होता है ॥२३॥

स्वरेण गम्यते देशो भोज्यं स्वरबले तथा ।
लघु दीर्घं स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ॥२४

स्वर के ही बल से परदेश-गमन और भोजन होता है और स्वर का बल ही लघु शंका व दीर्घशंका अर्थात् मल का निर्हरण होता है ॥२४॥

सर्वशास्त्रपुराणादि स्मृतिवेदांगपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्तिकिंचिद्वरानने ॥२५

हे वरानने ! सभी शास्त्र, पुराण, स्मृति और वेदांग आदि के सहित कोई भी तत्व ऐसा नहीं जो स्वरज्ञान से अधिक हो ॥२५॥

नामरूपादिकाः सर्वे मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।
अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्त्वं न विद्यते ॥२६

जब तक तत्वज्ञान नहीं होजाता तब तक नाम रूपादि सभी भ्रम मिथ्या है और अज्ञानजनित मूढ़ता भी तभी तक है ॥२६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरोदय शास्त्र की श्रेष्ठता

इदं स्वरोदयं शास्त्रं शर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकलिकोपमम् ।।२७

यह स्वरोदय शास्त्र सभी शास्त्रों में श्रेष्ठ है और आत्म रूपी घट को प्रकाशित करने में दीपक की बत्ती के समान है ।।२७।।

यस्मै कस्मै परस्मै वना प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतस्वयं ज्ञेयमात्मनोवाऽऽत्मनात्मनि ।।२८

प्रश्न करने पर भी यह स्वरोदय जिस किसी के प्रति नहीं कहना चाहिए, वरन् आत्म बुद्धि के द्वारा स्वयं ही जानना चाहिए ।।२८।।

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवता ।
न च विष्टिर्व्यतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ।।२९

यह तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह देवता भद्रा, व्यतीपात, वैधृति आदि के दोषों से रहित है ।।२९।।

स्वरबल से शुभ फल का प्राप्ति

कुयोगो नास्ततो देवि भविता वा कदाचन ।
प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ।।३०

हे देवि ! इसमें न तो कोई कुयोग है न कभी होगा, शुद्ध स्वर बल के प्राप्त होने पर ही सब फल शुभ स्वरूप होते हैं ।।३०।।

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तरात् ।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ।।३१

शरीर के मध्य बहुत रूपों वाली, सुविस्तृत अगणित नाड़ियाँ है, उन सबको अपने शरीर के ज्ञानार्थ जान लेना उचित है ।।३१।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नाड़ियों की संख्या

नाभिस्थानगकंदोर्ध्वमंकुराइव निर्गताः ।
द्विसप्ततिसहस्राणी देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥३२

नाभिस्थान के कन्द के ऊर्ध्व देश में अंकुर के समान निकलने वाली बहत्तर हजार नाड़ियाँ शरीर के मध्य में विद्यमान हैं।३२।

नाडीस्था कुण्डलीशक्तिर्भुजङ्गाकारशायिनी ।
ततो दशोर्ध्वगा नाड्योदशैवाधः प्रतिष्ठिताः ॥३३

नाडीस्थ कुण्डलिनी शक्ति सर्पाकार में है, जिससे ऊपर जाने वाली दश और नीचे की ओर जाने वाली भी दश नाड़ियाँ हैं ॥३३॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया ।
प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥३४

जो दो-दो नाड़ियाँ तिरछी गई हैं, वे चौबीस हैं, उनमें दश प्रधान नाड़ियाँ है और दश वायु का प्रवाह करने वाली हैं । ३४।

नाड़ियों की गति का वर्णन

तिर्यगूर्ध्वास्तथा नाड्यो वायुदेहसमन्विताः ।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥३५

तिर्यक्, ऊर्ध्व आदि सभी नाड़ियां देह में चक्र के समान स्थित और प्राण की आश्रित हैं ॥३५॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ॥३६

उन नाड़ियों में दश नाड़ियाँ श्रेष्ठ हैं उनमें भी तीन (अधिक) उत्तम हैं । वे हैं—इडा, पिंगला और तृतीय सुषुम्ना ॥३६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी तथा ॥३७

(चौथी गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और दशवीं शंखिनी है ॥३७॥

नाड़ियों के स्थान

इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि ॥३८

इडा बाँये भाग में, पिंगला दाँये में, सुषुम्ना मध्य देश में और गान्धारी बाँए नेत्र में होती है ॥३८॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे आनने चाप्यलम्बुषा ॥३९

दाँये नेत्र में हस्तिजिह्वा, दाँये कान में पूषा, बाँये कान में यशस्विनी और अलम्बुषा मुख में होती है ॥३९॥

कुहूश्च लिंगदेशे तु मूलस्थाने तु शंखिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः ॥४०

कुहू लिंगदेश में और शंखिनी मूल (गुह्य) देश में होती है। शरीर के दश द्वारों में इस प्रकार यह दशों नाड़ियाँ स्थित हैं ॥४०॥

पिङ्गलेडा सुषुम्ना च प्राणमार्गं समाश्रिताः ।
एताहि दश नाडयस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥४१

पिंगला, इडा, सुषुम्ना तीनों ही प्राणमार्ग की आश्रिता हैं। यह दशों नाड़ी देह के मध्य में विद्यमान हैं ॥४१॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वायुओं के भेद एवं स्थान

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानोव्यान एव च ।।४२

नाडियों के आश्रित पंच वायु के नाम बताता हूँ—प्राण, अपान, समान, उथान और व्यान ।।४२।।

नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।।४३

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय (यह पाँच उपवायु हैं) प्राण हृदय में और अपान गुदा में रहता है ।।४३।।

समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरी॰षु प्रधाना दश वायवः ।।४४

नाभिदेश में समान, कण्ठ में उदान और समूचे शरीर में व्यान वायु व्याप्त रहती है, यह दशों वायु प्रधान मानी जाती हैं ।।४४।।

प्राणाद्याःपन्च विख्याता नागाद्याःपंच वायवः ।
तेषामपि च पंचनां स्थानानि च वदाम्यहम्।।४५

प्राणादि पाँच और नागादि पाँच, यह दशों वायु विख्यात हैं, मैं उन नागादि पाँचों के भी स्थान बताता हूं ।।४५।।

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकलः क्षुतकृतज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणें ।।४६

उद्गार (वमन) में नाग, नेत्रोन्मीलन से कूर्म, छींकने में कृकल और जँभाई लेने में देवदत्त नामक वायु कहा गया है ।४६।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनंजयः ।
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमन्ते जीवरूपिणः ॥४७

सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त धनंजय वायु मृत शरीर को भी नहीं छोड़ता । इस प्रकार यह जीव रूप हुए यह दशों वायु सभी नाड़ियों में भ्रमण करते हैं ॥४७॥

नाड़ियों की त्रिवेणी

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षयेद्देहमध्यतः ।
इडापिङ्गलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिबुधः ॥४८

शरीर में जो प्राण का संचार है, उसे विद्वान् पुरुष इडा, पिंगला और सुषुम्ना से ही होता हुआ समझे ॥४८॥

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता ।
इडा नाडी स्थितावामाततोव्यस्ताचपिङ्गला ॥४९

वाम भाग में इडा और दक्षिण भाग में पिंगला कही जाती है । इडा नाड़ी वाम अंग में और पिंगला नाड़ी उससे विपरीत अर्थात् दक्षिण अंग में रहती है ॥४९॥

इडादि में चन्द्र, सूर्य और शिव का निवास ।

इडायां तु स्थितश्चन्द्रःपिङ्गलायांच भास्करः ॥
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसस्वरूपतः ॥५०

इडा में चन्द्रमा और पिंगला में सूर्य की विद्यमानता है । सुषुम्ना शंभु रूप में और शंभु हंस रूप में स्थित है ॥५०॥

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम् ।
हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥५१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

श्वास के निकलने में 'हकार' और प्रविष्ट होने में सकार होता है। हकार शिवरूप और सकार शक्तिरूप कहलाता है ॥५१॥

शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।
दक्षनाडीप्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ॥५२

वाम नाड़ी का प्रवाह करने वाला चन्द्रमा शक्तिरूप से और दक्षिण नाड़ी का प्रवाहक सूर्य शिव रूप से स्थित रहता है ॥५२॥

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानंजीवद्धोकेस्मिन् कोटि कोटिगुण भवेत् ॥५३

श्वास में सकार के स्थित होने पर बुद्धिमान पुरुष जो दान देता है, वह इस जीवलोक में करोड़ों गुणा फल देने वाला होता है ॥५३॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेव विजानीयान्मार्गे वै चन्द्र सूर्ययो ॥५४

एकाग्र और समाहित चित्त वाला योगी इस भांति देखे और सभी को चन्द्रमा और सूर्य के ही मार्ग में समझे ॥५४॥

जीव के स्थैर्य में इष्ट सिद्धि

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥५५

जीव के स्थिर रहने पर ही तत्व का ध्यान करे, चंचलता के समय कभी न करे। उसे इष्ट-सिद्धि, महान् लाभ और विजय की प्राप्ति होती है ॥५५॥

चन्द्रसूर्यसमभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नरः ।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ॥५६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चन्द्र और सूर्य स्वरों का ठीक प्रकार से अभ्यास करने वाले पुरुषों को भूत, भविष्यत् के ज्ञान की उपलब्धि होजाती है ।५६।

इडा नाड़ी की अमृतरूपता

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत्सदा ॥५७

वाम नाडी अमृत रूपिणी और सब जगत् का पोषण करने वाली होती है तथा दक्षिण नाड़ी सदा जगत् को उत्पन्न करती है ॥५७॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु ।
सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥५८

और मध्यमा अर्थात् सुषुम्ना सर्वत्र क्रूर एवं दुष्ट होती है, जबकि वामा नाड़ी सभी शुभ कार्यों में सिद्धि देने वाली होती है ॥५८॥

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥५९

निर्गम काल (बाहर जाते समय) वामा नाड़ी और प्रवेश काल दक्षिणा नाड़ी शुभ होती है । तथा चन्द्रमा सदा सम और सूर्य विषम समझना चाहिए ॥५९॥

चन्द्रःस्त्री पुरुष सूर्यश्चन्द्रो गौरोऽसितो रविः ।
चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥६०

चन्द्रमा स्त्री और सूर्य पुरुष है, चन्द्रमा गौर वर्ण का और सूर्य कृष्ण वर्ण का होता है । चन्द्रनाड़ी के प्रवाह काल में सौम्य कार्य करना उचित है ॥६०॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्माणि कारयेत् ।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्तिमुक्ति फलानि च ।।६१

सूर्य नाड़ी के प्रवाह में रौद्र अर्थात् क्रूर कर्म करे और सुषुम्ना के प्रवाह मे मुक्ति-मुक्ति रूप फलदायक कार्यों को करे ।।६१।।

आदौ चन्द्रःसिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि कृतोदया ।।६२

शुक्ल पक्ष में पहले चन्द्र स्वर और कृष्ण पक्ष में पहले सूर्य स्वर चलता है । प्रतिपदा से तीन-तीन दिवस चन्द्र और सूर्य के स्वर में बल होता है ।।६२।।

अहोरात्र में चन्द्र-सूर्य की आवृत्तियाँ

सार्धद्विघटिके ज्ञेयःशुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टिघटी क्रमात् ।।६३

ढाई घड़ी अर्थात् एक घंटा शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा और एक घण्टा कृष्ण पक्ष में सूर्य, इस प्रकार प्रतिदिन साठों घड़ी प्रवाहित रहते हैं । तात्पर्य यह कि दोनों स्वरों की क्रमशःचौबीस आवृत्तियाँ होती हैं ।।६३।।

वहेयुस्तद्घटीमध्ये पंचतत्त्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ।।६४

उन प्रत्येक ढाई घड़ी में पाँचों तत्वों का होना कहा है और प्रतिपदा से चन्द्र-सूर्य के दिन बताये हैं, उनके विपरीत स्वर चलना हो तो वह वर्जनीय है ।।६४।।

शुक्लपक्षे भवेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।
जानीयात्प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्यतमानसः ।।६५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ कर प्रथम वामा और कृष्णपक्ष में प्रथम दक्षिणा नाड़ी को एकाग्र मन से जानने का योगी को निर्देश है ॥६५॥

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवा वारय भास्करम् ।
इत्यभ्यासरतो नित्य स योगी नात्र संशयः ॥६६

रात्रि के समय चन्द्र स्वर का निवारण करे, ऐसे ही दिन के समय सूर्य स्वर का निवारण करना चाहिए, इस प्रकार अभ्यास करने वाला ही योगो है, इसमें सन्देह नहीं ॥६६॥

सूर्येण बध्यते सूर्यं चन्द्रश्चन्द्रेण बध्यते ।
योजानाति क्रियामेतांत्रैलोक्यं वशगं क्षणात् ॥३७

सूर्य स्वर से सूर्य और चन्द्र स्वर से चन्द्रमा बद्ध होता है। इस क्रिया को जानने वाला क्षणभर में ही त्रैलोक्य को वश में कर सकता है ॥६७॥

चन्द्रस्वर में सूर्योदय का फल

उदयं चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तमन यदि ।
तदा ते गुणसंधाता विपरीतं विवर्जयेत् ॥६८

यदि चन्द्र स्वर में सूर्य का उदय हो और सूर्य स्वर में अस्त हो तो अनेक गुणों के संघात उत्पन्न होते हैं। यदि इससे विपरीत हो तो उसका वर्जन करे ॥६८॥

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ॥६९

गुरु, शक्र, बुध और चन्द्र इन चार वारों में वाम नाड़ी सभी कार्यों में सिद्धि देने वाली होती है और शुक्ल पक्ष में ऐसा हो तो विशेष फल की प्राप्ति होती है ॥६९॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्काङ्गारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।
स्मर्त्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥७०

रवि, मंगल और शनि वारों में चर कार्यों में दक्षिण नाड़ी का स्मरण करे। कृष्ण पक्ष में इसके फल में विशेषता होती है ॥७०॥

प्रथमं वदते वायुर्द्वितीयं च तथानलः ।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणो वहेत ॥७१

पहले वायुतत्व, दूसरा अग्नितत्व, तीसरा पृथिवीतत्व चौथा वरुण (जल) तत्व, और पाँचवाँ आकाशतत्व प्रवाहित होता है ॥७१॥

नाड़ियों में पंचतत्वों का उदय

सार्द्ध द्विघटिके पञ्च क्रमेणैवोदयन्ति च ।
क्रमादेकैकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्भवः ॥७२

एक घण्टा में पाँचों तत्व क्रमपूर्वक उदय होते हैं तथा प्रत्येक नाड़ी में क्रमशः पाँचों तत्व उदित होते हैं ॥७२॥

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेयः द्वादशसंक्रमा ।
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ॥७३

रात्रि और दिवस के मध्य चन्द्र-सूर्य की बारह संक्रान्ति होती हैं, उनमें से दिवस में वृष, कर्क, कन्या, वृश्चित, मकर, मीन यह छओं संक्रान्ति चन्द्रमा की मानी गई हैं ॥७३॥

मेषसिंहौ च कुम्भश्च तुला च मिथुनं धनम् ।
उदये दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः ॥७४

मेष, सिंह, कुम्भ, तुला, मिथुन और धन सूर्य की संक्रान्ति होती हैं। इस प्रकार उदय और दक्षिण के शुभाशुभ का निर्णय हुआ ॥७४॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सूर्य प्रवाह में गमन के लिए निषिद्ध दिशाएँ

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे ।
दक्षनाड्याः प्रसारेतु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ॥७५

पूर्व और उत्तर में चन्द्रमा की और पश्चिम तथा दक्षिण में सूर्य । दक्षिण नाड़ी के प्रवाह काल में दक्षिण और पश्चिम में नहीं जाना चाहिए ॥७५॥

वामाचारप्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्व उत्तरे ।
परिपन्थिभयं तस्य गतोऽसौ न निवर्त्तते ॥७६

वाम नाडी के प्रवाह में पूर्व और उत्तर में गमन न करे, वैसा करने पर शत्रु का भय होता या जाने वाला लौटता नहीं ।७६।

तत्र तस्मान्न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः ।
तदा तत्र तु संयाते मृत्युरेव न संशयः ॥७७

इसलिए सर्व हितैषी और विद्वान् पुरुष को उस समय नहीं जाना चाहिये, अन्यथा मृत्यु होने में संशय नहीं ॥७७॥

शुक्लपक्षे द्वितीयायामर्के वहति चन्द्रमाः ।
दृश्यतेलाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ॥७८

शुक्ल पक्ष की द्वितीया में सूर्य के प्रवाह में चन्द्रमा के होने पर वह पुरुषों को लाभप्रद होता है। उस समय सौम्य कर्म करने से सौख्य प्रकट होता है ॥७८॥

सूर्योदय में सूर्य स्वर से कार्य सिद्धि

सूर्योदये यदा सूर्यश्चपूचन्द्रोदये भवेत् ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवारात्रिगतान्यपि ॥७९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जब सूर्य के उदयकाल में सूर्य और चन्द्रमा के उदयकाल में चन्द्रमा का स्वर हो तो उस दिवस या रात्रि में जो भी कार्य किये जाँय, सभी सिद्ध होजाते हैं ॥७९॥

चन्द्रकाले यदा सूर्य सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् ।
उद्वेगः कलहो हानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ॥८०

परन्तु जब चन्द्रमा के समय सूर्य और सूर्य के समय चन्द्रमा हो तो उद्वेग, कलह और हानि होकर सभी कर्म निवृत्त हो जाते हैं ॥८०॥

सूर्यस्य वाहे प्रवदन्ति विद्या ।
ज्ञानं ह्यगम्यस्य तु निश्चयेन ॥
श्वासेन युक्तस्य तु शीतरश्मेः ।
प्रवाहकाले फलमन्यथा स्याद् ॥८१

जो विद्वान् सूर्य के प्रवाह में अगम्य वस्तु का ज्ञान को निश्चय पूर्वक कहते हैं तथा चन्द्रमा का प्रवाह हो तो उसका फल विपरीत होता है ॥८१॥

विपरीत स्वरों का फल कथन

यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत् ।
चन्द्रस्थाने वहत्यर्को रविस्थाने च चन्द्रमा ॥८२

जब प्रातःकाल के प्रारम्भ से विपरीत स्वर उदय हों तब चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य और सूर्य के स्थान पर चन्द्रमा हो जाता है ॥८२॥

प्रथमे मनउद्वेगं धनहानिर्द्वितीयके ।
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाश चतुर्थके ॥८३

पहले में मन का उद्वेग, दूसरे में धन की क्षति, तीसरे में गमन और चौथे में कामनाओं का नाश होता है ॥८३॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पंचमे राज्यविध्वंसं षष्ठे सर्वार्थनाशनम् ।
सप्तमे व्याधिदुःखानिअष्टमे मृत्युमादिशेत् ॥८४

पाँचवें में राज्य का विध्वस, छठे में सर्वार्थ का नाश, सातवें में व्याधि और दुःख तथा आठवें में मृत्यु होना कहते हैं ॥८४॥

कालत्रये दिनान्यष्टौ विपरीतं यदा वहेत् ।
तदा दुष्टफलं प्रोक्त किंचिन्न्यूनं तु शोभनम् ॥८५

प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों कालों में यदि विपरीत स्वर उदित होकर निरन्तर आठ दिन पर्यन्त चले तो उसका दुष्ट फल और कुछ समय विपरीत चले तो शुभ फल होना कहा है ॥८५॥

जयलाभ का लक्षण

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रःसायंकाले दिवाकरः ।
तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत् ॥८६

जब प्रातः और मध्याह्न में चन्द्र स्वर तथा सायंकाल सूर्य स्वर चले तो जय और लाभ होगा तथा विपरीत चले तो उसे रोक दे ॥८६॥

वामे व दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवः ।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा॥८७

यात्राकाल में बाम या दक्षिण जो भी स्वर चलता हो, उसी पाँव को पहिले आगे रख कर यात्रा करने से वह यात्रा सिद्धि के देने वाली होती है ॥८७॥

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा ।
पूर्णपादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा ॥८८

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चन्द्र स्वर चले तो समपद (पूरा) और सूर्य स्वर चले तो विषमपद (ऊना) रखे। इस प्रकार पूर्णपाद को आगे रखे तो यात्रा सिद्धिदात्री होती है ॥८८॥

यत्रांगे वहते वायुस्तदंगकरसंतलात् ।
सुप्तोत्थितो मुखं स्पृष्ट्वाल भतेवांचितंफलम् ॥८९

जिस अंग का स्वर चले, उस अंग के हाथ के तलुए से, सोते से उठ कर मुख का स्पर्श करने से इच्छित फल मिलता है ॥८९॥

स्वर प्रवाह वाले अङ्ग को आगे करना

परदत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपि च ।
यदंगे वहते नाडी ग्राह्यं तेन करांघ्रिणा ॥९०

अन्य को देते समय या किसी से लेते समय अथवा घर से निर्गमन करते समय जिस ओर की नाड़ी चले उसी हाथ या पाँव को आगे करके वस्तु ग्रहण करे ॥९०॥

न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते ।
निवर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ॥९१

वैसा करने से न हानि होगी, न कलह, न कंटक (या शत्रु) का भय होगा तथा सदा सुखी और उपद्रवों से परे रहेगा ॥९१॥

पूर्ण हाथ से शुभ कार्यों की सिद्धि

गुरुबन्धुनृपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनी ।
पूर्णाङ्गेखलु कर्त्तव्याकार्यसिद्धिर्मनःस्थिता ॥९२

गुरु, बन्धु, राजा, अमात्य आदि से शुभदायिनी कार्य-सिद्धि की अपेक्षा हो तो भरे हुए हाथ से उनके पास जाय तो उस सिद्धि से मन के अनुसार फल होता है ॥९२॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रिक्त हाथ से निग्रह कार्यों की सिद्धि

अग्निचोराधर्मधर्मा अन्येषां वादिनिगृह ।
कर्त्तव्याः खलु रिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः ॥९३

अग्नि, चोर, अधर्म, धर्म, वादी का दमन करना अपेक्षित हो तो विजय लाभ रूपी सुख चाहने वाले पुरुष खाली हाथ जाकर ही कार्यसिद्धि को प्राप्त हो सकते हैं ॥९३॥

दूरदेशे विधातव्यं गमनं तु हिमद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु कारणाविति केचन ॥९४

कोई कहते हैं कि दूर देश में जाये तो चन्द्रस्वर में और निकट जाय तो सूर्य के स्वर में जाना चाहिए ॥९४॥

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादिसमरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ॥९५

जो लाभादि पहले कह चुके हैं उसका युद्धकाल में होना तभी सम्भव है जब नाड़ी पूर्ण स्वर में चल रही हो ॥९५॥

शून्यनाड्या विपर्यस्तं यत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥९६

यदि शून्य नाड़ी चलती हो तो उसका फल उपयुक्त से विपरीत होता है ॥९६॥

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवञ्चके ।
कुपितस्वामिचोराद्ये पूर्णस्थाःस्युर्भयंकराः ॥९७

पूर्ण स्वर चलने के समय व्यावहारिक कार्य करना, दुष्टों को दण्ड देना, वैर करना, विद्या प्रदान करना, वंचना करना, स्वामी का क्रुद्ध होना, चोरी करना आदि कार्यों का फल भयकर होता है ॥९७॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दूरमार्ग गमन में चन्द्र स्वर की श्रेष्ठता

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नोऽभीष्टसिद्धिदः ।
प्रवेशकार्यहेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्यते ।।९८

चन्द्र स्वर दूर मार्ग की यात्रा को निर्विघ्न रूप से पूर्ण करता हुआ अभीष्ट सिद्धि देता है और गृह प्रवेशादि कार्यों में सूर्यनाड़ी प्रशस्त होती है ।।९८।।

अयोग्ये योग्यता नाड्या योग्यस्थानेप्ययोग्यता ।
कार्यानुबंधनो जीवो यथा रुद्रास्तथा चरेत् ।।९९

अयोग्य कार्य में नाड़ी की योग्यता और योग्य कार्य में नाड़ी अर्थात् स्वर की योग्यता में जीव कार्य का अनुबन्धी होता है । जिस प्रकार रुद्र नाड़ी चलें उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए ।।९९।।

चन्द्राचारे विषहते सूर्यों बलिवशं नयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्मोक्ष एको देवास्त्रिधास्थितः ।।१००

चन्द्रमा का स्वर विष को दूर करता और सूर्य स्वर वाली पुरुष को वशीभूत बनाता है तथा सुषुम्ना के स्वर में मोक्ष होती है । इस प्रकार तीन रूपों में एक ही देव स्थिति है ।।१००।।

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियन्तेऽहर्निशं यदा ।
तदाकार्यानूरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ।।१०१

दिन या रात में जो भी शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है, उस कर्म के अनुसार ही नाड़ी चालन करे । इस प्रकार कार्यानुकूल स्वर प्रवाह ही सिद्धिदाता होता है ।।१०१।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इडा नाड़ी का फल कथन

स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा ।
आश्रमे धर्मप्रासाद वस्तूनां संग्रहेऽपिच ॥१०२

स्थिर कार्य (उपासना, तपस्यादि), आभूषण धारण, दूर-गमन, आश्रमधर्म पालन, प्रासाद निर्माण तथा घर की वस्तुओं के सग्रह में इडा अनुकूल है ॥१०२॥

वापोकूपतडागादेः प्रतिष्ठा स्तंभदेवयोः ।
यात्रादाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ॥१०३

बावड़ी, कुँआ, सरोवर, देवस्तम्भ आदि का प्रतिष्ठापन तथा यात्रा, दान, विवाह और वस्त्रालंकार धारण में भी इडा की अनुकूलता प्राप्त करे ॥१०३॥

शांतिके पौष्टिके चैव दिव्यौषधिरसायने ।
स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंगृहे ।।१०४

शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म, दिव्य औषधि या रसायन-सेवन, अपने स्वामी के दर्शन, वाणिज्य कर्म और अन्न-संग्रह इड़ा के प्रवाहकाल में करे ।१०४।

गृहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने ।
शुभकर्मणि संधौ च निर्गमे शुभः शशो ॥१०५

गृह-प्रवेश, सेवा, कृषि, बीज वपन आदि शुभकर्म और संधि एवं बाहर गमन आदि में भी चद्र स्वर शुभ होता है ॥१०५॥

विद्यारम्भादिकार्येषु बान्धवानां च दर्शने ।
जन्मन्मोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥१०६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विद्या का आरम्भ आदि कार्य, बान्धवों के दर्शन, जन्म, मोक्ष धर्म, यज्ञ की दीक्षा और मन्त्रसिद्धि में इडा का चालन शुभ है ॥१०६॥

कालविज्ञानसूत्रे तु चतुष्पादगृहागमे ।
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसंबोधने तथा ॥१०७

काल-ज्ञान, यज्ञोपवीत धारण, चौपायों का घर में आगमन, कालव्याधि की चिकित्सा और स्वामी के सम्बोधन में इडा-चालन करे ॥१०७॥

गजाश्वारोहणे धन्विगजाश्वानां च बंधने ।
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ॥१०८

हाथी-घोड़े की सवारी, धनुष का धारण, हाथी-घोड़ों को बाँधना, परोपकार करना और कोष का स्थापना करना इडा स्वर में करे ॥१०८॥

गीतवाद्यादिनृत्यादौ नृत्यशास्त्रविचारणे ।
पुरग्रामनिवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ॥१०९

गीत, वाद्य, नृत्यादि, नृत्यशास्त्र का विचार, पुर और ग्राम का प्रवेश, तिलक और क्षेत्र धारण चन्द्रनाड़ी के चालन काल में करे ॥१०९॥

आर्तिशोकविषादेषु ज्वरितेमूर्च्छितेऽपि वा ।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादेर्दारुसंग्रहे ॥११०

रोग, शोक, विषाद ज्वर, मूर्च्छा, स्वजन और स्वामि-सम्बन्ध तथा अन्न और काष्ठादि के संग्रह में चन्द्रस्वर श्रेष्ठ है ॥११०॥

स्त्रीणां दन्तादिभूषायाँ वृष्टेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषदीनां चालने च वरानने ॥१११

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हे वरानने ! स्त्रियों के दन्तरागादि कार्य में, वृष्टि के आगमन में, गुरु के पूजन या विषादि के बाहर निकलने में चन्द्र स्वर श्रेष्ठ होता है ।।१११।।

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च ।
तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ।।११२

इडा नाड़ी में योगाभ्यास अदि कर्म सिद्धि का देने वाला कहा होने पर भी जब इडा में वायु, तेज और आकाश तत्व प्रवाहित हो तब इडा का वर्जन करे ।।११२।।

सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ।।११३

दिन-रात्रि में किये जाने वाले सब कार्य सिद्ध होने और सभी शुभ कार्यों में चन्द्रस्वर का चलना ही प्रशस्त होता है ।।११३।।

पिंगला नाडी का फलकथन

कठिनक्रूर विद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ।।११४

कठिन एवं क्रूर आदि विद्याओं के पठन-पाठन में, स्त्री-संग, वेश्यागमन, तथा जलपोत पर चढ़ने में पिंगला नाड़ी का चलना शुभ है ।।११४।।

भ्रष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने ।
विह्वलोद्ध्वंसदेशादौ विषदानेचवैरिणाम् ।।११५

भ्रष्ट कार्य, मदिरा-पान, वीरकर्म वाले मन्त्रों की सिद्धि विह्वलता, देशादि का विध्वंस और वैरियों को विष देने में भी इसकी श्रेष्ठता है ।।११५।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगयापशुविक्रये ।
इष्टिकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारणे ॥११६

शास्त्र के अभ्यास में, जाने में, मृगया करने या पशुओं के बेचने में, ईंट, काष्ठ, पाषाण और रत्न आदि के घिसने या तोड़ने में भी सूर्य नाड़ी श्रेष्ठ है ॥११६॥

गत्यभ्यासे यंत्रतंत्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥११७

गति का अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र का व्यवहार, दुर्ग या पर्वत पर आरोहण, द्यूत और चौर्य कर्म हाथी, घोड़े और रथादि वाहनों का चालन सूर्य स्वर में करे ॥११७॥

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादिकसाधने ।
यक्षिणीयक्षबेतालविभूतादि निगृहे ॥११८

व्यायाम, मारण, उच्चाटन, षट्कर्मादि के साधन में तथा दक्षिणी, यक्ष, बेताल, विष एवं भूतादि के निग्रह में यह श्रेष्ठ है ॥११८॥

खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वरोहणे तथा ।
नदीजलौघतरणे भेषजे लिपिलेखने ॥११९

गधा, ऊँट, भैंस आदि पर तथा हाथी-घोड़े पर आरोहण करना, नदी के जल में तैरना, औषधोपचार और लिपि का लेखन पिंगला स्वर में करे ॥११९॥

मारणे मोहने स्तंभे विद्वेषोच्चाटने वशे ।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥१२०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मारण, मोहन, स्तम्भन, शत्रु-उच्चाटन, वशीकरण मन्त्रों का प्रयोग, प्रेरण, आकर्षण, क्षोभ, दान, क्रय, विक्रय आदि में यह उपयोगी है ॥१२०॥

प्रेताकर्षणविद्वेषशत्रुनिगृहणेऽपि च ।
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने ।
भोज्ये स्नाने व्यवहारे दीप्तकार्ये रविशुभः ॥१२१

प्रेत का आकर्षण, विद्वेष, शत्रु-निग्रह, खड्ग धारण, शत्रु से युद्ध, भोग, राज-दर्शन, भोजन, स्नान, व्यवहार और तेजयुक्त (यज्ञादि) कार्य में भी सूर्य स्वर श्रेष्ठ है ।१२१।

भुक्तमार्गेण मन्दाग्नौ स्त्रीणां वश्यादिकर्मणि ।
शयनंसूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥१२२

भोजन, मन्दाग्नि की चिकित्सा, स्त्रियों के वशीकरण एवं शयन आदि सब कार्य विद्वानों को सूर्य स्वर के प्रवाह में करने चाहिए ॥१२२॥

क्रूराणिसर्वकर्माणि चराणि विविधानि च ।
तानिसिद्धयन्ति सूर्येणनात्रकार्याविचारणा ॥१२३

सभी क्रूर कर्म और विविध प्रकार के चर कर्म सब सूर्य नाड़ी में सिद्ध होते हैं, इसमें विचारणीय कुछ नहीं है ।१२३॥

सुषुम्ना नाडी का फल कथन

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ॥१२४

जिसमें क्षण भर में बाँये भाग मे और क्षण भर में दाँये भाग में वायु का प्रवाह हो वह नाड़ी सब कार्यों का हरण करने वाली सुषुम्ना कही जाती है ॥१२४॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तस्यां नाड्यां स्थितो वह्निर्ज्वलते कालरूपकः ।
विषवत्तं विजानीयात्सर्वकार्यविनाशनम् ॥१२५

उस नाड़ी में स्थित जो अग्नि काल रूप से जलती है, उसे विषवती और सभी कार्यों के नष्ट करने वाली समझनी चाहिए ॥१२५॥

दयाऽनुक्रममुल्लंघ्य यस्य नाडीद्वयं वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ॥१२६

जब स्वर-प्रवाह नियमों के क्रम का उल्लघन करता हुआ वायु चलता है, तब उसका अशुभ होना जाने, इसमें संशय नहीं है ॥१२६॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भावमादिशेत् ।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने ॥१२७

हे वरानने ! क्षणभर वाम भाग में और क्षणभर दक्षिण भाग में वायु चले तो उसे विपरीत और विषम फल युक्त जाने ॥१२७॥

उभयोरेव संचारं विषवत्तं विदुर्बुधाः ।
न कुर्यात्क्रूर सौम्यानितत्सर्वं विफलं भवेत् ॥१२८

विद्वानों ने दोनों नाड़ियों के एक समय चलने को विष के समान माना है. उसमें क्रूर और सौम्य कर्मों को न करे क्योंकि वे सब विफल होते हैं ॥१२८॥

विपरीत स्वर संचार में ईश्वर स्मरण

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये ।
विषमे विपरीते च संमस्रेज्जगदोश्वरम् ॥१२९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीवन, मरण, प्रश्न, लाभ, अलाभ, जय, पराजय आदि विषम और विपरीत प्रवाह में न करे, वरन् वैसा अवसर हो तो जगदीश्वर का स्मरण करना चाहिए ।।१२६।।

ईश्वरे चिंतिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च ।

अन्यत्तत्र न कर्तव्यं जयला सुखैषिभिः ।।१३०

ईश्वर का चिन्तन करता हुआ योगाभ्यास आदि कर्म हो करे तथा जय लाभ या सुख का अभिलाषा वाला कोई अन्य कार्य न करे ।।१३०।।

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः ।

शापंदद्याद्वरं दद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ।।१३१

जब सूर्य स्वर का प्रवाह बारम्बर सुषुम्ना में होता हो तब दिया जाने वाला शाप या वरदान विपरोत होजाता है ।।१३१।।

नाडीसंक्रमणे काले तत्त्वसंगमनेऽपि च ।

शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि किंचन ।।१३२

नाड़ी के संक्रमण काल छे तत्वों के सङ्गमन होने पर पुण्य, दान आदि कोई भी शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ।।१३२।।

विषमस्योदयो यत्र मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।

यात्रा हानिकरो तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः ।।१३३

विषम स्वर के सचालक काल के मन से भी किसी शुभ कार्य का चिन्तन न करे। उस अवस्था में यात्रा हानिकारक होती और मृत्यु अथवा क्लेश की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है ।।१३३।।

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रोदक्षाधः पृष्ठतो रविः ।

पूर्णारिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैःसदा ।।१३४

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चन्द्र स्वर का प्रवाह वाम और ऊपर की ओर हो तो पूर्ण एवं विपरीत हो तो शून्य होता है। बसी प्रकार सूर्य स्वर का प्रवाह पीछे, दाँयी ओर और नीचे की ओर हो उसे पूर्ण समझना चाहिए ।

ऊर्ध्ववागतो दूतो ज्ञेयो वामपथे स्थितः ।
पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्तात्सूर्यवाहागतः शुभः ॥१३५

चन्द्रस्वर के प्रवाह काल में आया हुआ दूत यदि बाँयी ओर आगे या ऊपर की ओर बैठे तो शुभ होता है। ऐसे ही सूर्य स्वर के प्रवाह काल में आया हुआ दूत यदि दाँयी ओर या नीचे की ओर बैठे तो भी शुभ ही होता है ॥१३५॥

सन्ध्या का स्वरूप वर्णन

अनादिर्विषमः संधिर्निराहारो निराकुलः ।
परे सूक्ष्मे विलीयेत सा सन्ध्या सद्भिरुच्यते ॥१३६

अनादि विषम सन्धि (सुषुम्ना) निराहार और निराकुल होकर परम सूक्ष्म में विलीन होती है, तब उस सुषुम्ना को विद्वज्जन संध्या कहते हैं ॥१३६॥

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते ।
परमात्मा वेद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥१३७

पंडितों ने वेद को वेद नहीं माना। उनके मत में वेद नहीं है, वरन् जिसके द्वारा परमात्मा जाना जा सके, वही वेद कहा गया है ॥१३७॥

न संध्या सन्धिरित्याहुः संध्या संधिर्निगद्यते ।
विषमः संधिगः प्राणः स संधिःसंधिरुच्यते ॥१३८

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विज्ञजन सन्ध्या को सन्ध्या नहीं कहते, क्योंकि सन्ध्या संध्या नहीं है, वरन् विषम सन्धि में प्राण होने पर ही सन्ध्या कही जाती है ।१३८।

पार्वती का रहस्य विषयक प्रश्न

देवदेव महादेव सर्वसंसारतारकः ।
स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥१३९

पार्वतीजी ने कहा—हे देवों के देव महादेव ! हे सम्पूर्ण संसार के तारने वाले ! हे प्रभो ! आपके हृदय में जो रहस्य है, उसे मेरे प्रति कहिए ।१३९।

शिव द्वारा समाधान का आरम्भ

स्वरज्ञानरहस्यात्तु न काचिच्चेष्टदेवता ।
स्वरज्ञानरतोयोगी स योगी परमो मतः ॥१४०

शिवजी बोले—स्वरज्ञान के रहस्य से बढ़कर कोई इष्टदेव नहीं है । जो योगी स्वरज्ञान में मग्न है, वही परमयोगी माना जाता है ।१४०।

पञ्चतत्वाद्भवेत्वेत्सृष्टितत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते ।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥१४१

पंच तत्वों से सृष्टि होती हे और तत्व में ही तत्त्व का लय होजाता है । पांच तत्त्व ही परम श्रेष्ठ हैं और उनसे परे निरंजन ब्रह्म है ।१४०।

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिभिः ।
भूतानां दुष्ट चिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥१४२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

योगा योगसिद्धि के द्वारा तत्वों के नामों को जाने । स्वरों को ही श्रेष्ठ समझने वाला पुरुष दुष्ट चिन्हों को जानने में समर्थ होता है ॥१४२॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पंचभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥१४३

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पांच तत्व हैं और इनसे युक्त विश्व को जो जानता है, वह पूजित होता है ॥१४३॥

सर्वलोकस्थजीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः ।
भूलोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक्पृथक् ॥१४४

सभी लोकों में वास करने वाले जीवों के शरीरों में तत्व की भिन्नता नहीं है, परन्तु भूलोक से सत्यलोक पर्यन्त के प्राणियों में नाड़ी का पृथक्-पृथक् भेद मिलता है ॥१४४॥

अष्टधा तत्वज्ञान कथन

वामे वा दक्षिणे वाऽपि उदयाः पंच कीर्तिता ।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामिसुन्दरी ॥१४५

वाम और दक्षिण स्वर में पंचतत्वों का उदय कहा गया । हे सुन्दरी ! उन तत्वों का आठ प्रकार का विज्ञान है, उसे सुनो ॥१४५॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससंधयः ।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥१४६

प्रथम भेद में तत्वों की संख्या, द्वितीय में श्वास-सन्धि, तृतीय में स्वरों के चिह्न और चतुर्थ में स्वरों के स्थान हैं ॥१४६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पञ्चमे तस्य वर्णश्च षष्ठे तु प्राण एव च ।
सप्तमे स्वादसंयुक्ता अष्टमे गतिलक्षणम् ॥१४७

पंचम में उनका वर्ण, षष्ठ में प्राण, सप्तम में स्वाद का सयोग और अष्टम में गति के लक्षण हैं ॥१४७॥

एवमष्टविधं प्राणं विषुवन्तं चराचरम् ।
स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ॥१४८

इस प्रकार चराचर जगत् में व्यापक आठ प्रकार का प्राण विद्यमान है। हे देवि ! स्वर से परे कोई अन्य ज्ञान नहीं है ॥१४८॥

सदा स्वरावलोकन कर्त्तव्य

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूपकालतः ।
कालस्य वञ्चनार्थाय कर्मकुर्वन्ति योगिन ॥१४९

प्रातःकाल से ही पर्यन्त पूर्वक स्वरों के प्रवाह को देखे, क्योंकि योगी पुरुष काल के वंचनार्थ कर्म करने में समर्थ होते हैं ॥१४९॥

श्रुत्योरंगुष्ठकौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रान्तके चान्यांगुलीर्दद्याच्च नेत्रयो ॥१५०

दोनों अँगूठों को दोनों कानों में, दोनों नासापूटों में दोनों मध्यमा अँगुलियों को और मुख के प्रान्त भाग तथा नेत्रों में हाथों की शेष अँगुलियों को लगावे ॥१५०॥

अस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधिकम् ॥१५१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस प्रकार करने से पृथिवी आदि तत्वों का क्रमपूर्वक ज्ञान होता है। पृथिवी पीत, जल श्वेत, अग्नि लाल, वायु श्याम और आकाश चित्र वर्ण का दिखाई देता है ।१५१।

आकार-दर्शन से तत्वज्ञान

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात्तत्त्वभेदं विचक्षणः ॥१५२

दर्पण में देखता हुआ श्वास का त्याग करे और विद्वान् पुरुष आकार देखकर ही तत्व के भेद को जान ले ।१५२।

चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलं स्मृतम् ।
बिंदुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥१५३

यदि चौकोर, अर्द्ध चन्द्राकार, त्रिकोण, वर्तुलाकार बिन्दु-आकार दिखाई दे तो उसे आकाश तत्व का लक्षण समझना चाहिए ।१५३।

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमे ॥१५४

मध्य में भूमि, नीचे जल, ऊपर की ओर अग्नि और तिरछा प्रवाह वायु का होता है। यदि दो स्वरों का संक्रम हो तो आकाश तत्व का चलना समझे ।१५४।

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ॥१५५

जल का वर्ण श्वेत, पृथिवी का पीत, अग्नि का लाल, वायु का नीला और आकाश का सर्ववर्ण अर्थात् मिश्रित वर्ण होता है ।१५५।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्थानपरत्व से तत्वज्ञान

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभञ्जनः।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ॥१५६

दोनों कन्धों में अग्नितत्व, नाभि के मूल में वायु तत्व, जानु प्रदेश में पृथिवी तत्व, पाँवों के अन्तिम भाग में जल तत्व और मस्तक में आकाश तत्व रहता है।१५६।

स्वाद से तत्वज्ञान

माहेयं मधुरं स्वादे कषायं जलमेव च।
तीक्ष्णं तेजः समीरोऽम्ल आकाशं कटुकं तथा॥१५७

पृथिवी का स्वाद मधुर, जल का कषैला, अग्नि का तीक्ष्ण, वायु का खट्टा और आकाश का कड़ुआ होता है।१५७।

गति से तत्वज्ञान

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनिश्चतुरंगुलम्।
द्वादशांगुलं माहेयं वारुणं षोडशांगुलम् ॥१५८

वायु का प्रवाह आठ अंगुल, अग्नि की गति चार अंगुल, पृथिवी की बारह अंगुल और जल की सोलह अंगुल, होती है ॥ १५८ ॥

ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा।
मध्ये स्तम्भं विजानीयान्नभः सर्वत्रमध्यमम् ॥१५९

ऊर्ध्व स्वर मृत्यु जनक, अधःस्वर शान्तिदायक, तिर्यक् उच्चाटन करने वाला, मध्य स्वर स्तम्भ करने वाला होता है। आकाश तत्व को सभी कार्यों में मध्यम समझना चाहिए।१५९।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

तत्वों के विभिन्न फल

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसि क्रूरकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले ॥१६०

पृथिवी में स्थिर कार्य करे। जल में चर काय, तेज में क्रूर कार्य तथा वायु में मारण और उच्चाटन कर्म करने चाहिए ॥१६०॥

आकाश तत्व में कार्य-निषेध

व्योम्नि किंचिन्न कर्तव्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥१६१

आकाश तत्व के उदय में कुछ भी कार्य न करके योग सेवन का अभ्यास मात्र करे, क्योंकि इसमें सभी कार्यों में शून्यता होती है, इसमें विचार की कोई बात नहीं ॥१६१॥

पृथ्वीजलाभ्यांसिद्धिः स्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनले।
नभसो निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववादिभिः ॥१६२

पृथिवी और जल तत्वों से सिद्धि होती है। जल तत्व से मृत्यु, वायु से क्षय और आकाश से सब कार्य निष्फल होते हैं, यह तत्ववादियों के लिए ज्ञातव्य है ॥१६२॥

चिरलाभः क्षितेर्ज्ञेयस्तत्क्षणे तोयतत्त्वतः ।
हानिःस्याद्वह्निवाताभ्यांनभसोनिष्फलंभवेत्॥१६३

पृथिवी से स्थायी लाभ, जल से तत्क्षण लाभ वायु और अग्नि से हानि तथा आकाश तत्व से कर्म की निष्फलता होती है ॥१६३॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पार्थिव वायु का फल

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ।
कवोष्णः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः ।।१६४

पीत वर्ण का, धीरे-धीरे मध्य में चलने वाला तथा ठोड़ी पर्यन्त भारी शब्द करने वाला, कुछ उष्णता युक्त पार्थिव वायु अर्थात् स्वर स्थिर कार्यों का करने वाला होता है ।।१६४।।

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतलः स्थितः ।
यः षोडशांगुलोवायुः सआपः शुभकर्मकृत्ः ।।१६५

अधोवाही, भारी ध्वनि वाला, शीघ्र गतिवान्, शीतल और सोलह अंगुल परिमाण का वायु (स्वर) जल सम्बन्धो है, जो कि शुभ कर्म कराने वाला होता है ।।१६५।।

आवर्त्तगश्चत्युष्णश्च शोणाभश्चतुरंगुलः ।
ऊर्ध्वं वाही च यः क्रूरः कर्मकारी स तैजसः ।।१६६

जो आवर्त्तक (चक्र के समान बहने वाला), अति उष्ण, लाल वर्ण का, चार अंगुल परिमाण वाला जो स्वर ऊपर की ओर चले, वह तेज का होता है। इसमें क्रूर कर्म करने चाहिए ।।१६६।।

वायुतत्व में कार्यों की सिद्धि

उष्णः शीत कृष्णवर्णस्तिर्यग्गाम्यष्टकांगुलः ।
वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः ।।१६७

उष्ण, ठंडा, कृष्ण वर्ण का, तिर्यक् चाल वाला, आठ अंगुल का स्वर वायु का होता है, वह चर कार्य सिद्ध करने वाला है। ।।१६७।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः ।
अम्बरंतंविजानीयाद्योगीनां योगदायकम् ॥१६८

जो स्वर समरस और सभी तत्वों के गुणों का वाहक हो, वह योगियों के लिए योगदायक स्वर आकाश का होता है ॥१६८॥

पीतवर्ण चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाह द्वादशांगलम् ॥१६९

पीत वर्ण का, चौकोर, मधुर और मध्य में बारह अंगुल के प्रवाह वाला वायु पृथिवी सम्बन्धी होता है, यह भोगों का देने वाला है ॥१६६॥

जल तत्व से लाभ कथन

श्वेतमर्धेन्दुसंकाशं स्वादुकाषायमार्द्रकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम् ॥१७०

श्वेत रंग का अर्द्ध चन्द्राकार, कषैले स्वाद का, आर्द्र तथा सोलह अंगुल प्रवाह परिणाम का स्वर जल-सम्बन्धी होता है ॥१७०॥

रक्तं त्रिकोणं तीक्ष्णं च ऊर्ध्वभागप्रवाहकम् ।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम् ॥१७१

लाल रंग का, त्रिकोणाकार, तीक्ष्ण, ऊध्व भाग की ओर प्रवाह वाला, दीप्तिमान तत्व तैजस होता हैं, जिसका परिमाण चार अंगुल का है ।१७१।

नीलं च वर्तुलाकारं स्वाद्वम्लं तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेष्टांगुलं स्मृतम् ॥१७२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नील वर्ण का वर्तुलाकार, अम्ल स्वाद वाला, तिर्यक् गतियुक्त आठ अंगुल प्रवाह वाला चपल तत्व वायु का होता है।१७२।

वर्णाकारे स्वादवाहे अव्यक्त सर्वगामिनाम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्व सर्वकार्येषु निष्फलम् ।।१७३

जिसका वर्ण, आकार, स्वाद अव्यक्त और गति सर्वगामिनी हो वह मोक्षदाता आकाश तत्व अन्य सब कार्यों में निष्फल होता है।१७३।

पंचतत्वों के शुभाशुभफल

पृथ्वी जले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ।।१७४

पृथिवी और जल तत्व शुभ होते हैं, तेज के तत्व का मिश्रित फल होता है तथा आकाश और वायुतत्व हानि व मृत्यु आदि अशुभ के करने वाले हैं।

आपूर्वपश्चिमं पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।
वायु श्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ।।१७५

पूर्व से पश्चिम पर्यन्त पृथिवी, उत्तर में वायु और मध्य दिशा में आकाश तत्व समझना चाहिए।१७५।

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्येऽग्निर्वा यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्नसन्देहः सौम्यासौम्येषुकर्मसु ।।१७६

जब चन्द्र स्वर में पृथिवी और जल तत्व तथा सूर्य स्वर में अग्नि तत्व हो, तब सौम्य और असौम्य दोनों प्रकार के कर्म निःसन्देह सिद्ध होते हैं।१७६।

लाभः पृथ्वीकृतोऽह्नि स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।
वह्नौ मृत्युः क्षयोवायुर्नभः स्थानन्दहेत्क्वचित्।।१७७

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दिन में पृथिवी तत्व से और रात्रि में जल तत्व से लाभ होता है तथा तथा अग्नि तत्व से मृत्यु, वायु तत्व से क्षय और आकाश तत्त्व से कभी-कभी दाह भी हो सकता है ।।१७७।।

पृथिवीतत्व का विशेष फल

जीवितव्ये जये लाभे कृष्यां च धनकर्मणि ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ।।१७८

जीवन, विजय, लाभ, कृषि, धन प्राप्ति के कर्म, मन्त्र सिद्धि के कर्म, युद्ध, प्रश्न तथा जाने और आने में पृथिवी तत्व उपयुक्त है ।।१७८।।

आयाति वारुणे तत्वे शत्रुरस्ति शुभः क्षितौ ।
प्रयातिवायुतोऽन्यत्र हानिमृत्यु नभोऽनले ।।१७९

जल तत्व के आगमन में शत्रु का आगमन, पृथिवी तत्व में शुभफल, वायु तत्व में शत्रु का अन्यत्र और आकाश या अग्नि तत्व में शत्रु की हानि या मृत्यु समझे ।।१७९।।

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जवस्य जलवातयोः ।
तेजसाधातुचिंतास्याच्छून्यमाकाशतोवदेत् ।।१८०

पृथिवी तत्व के उदय होने पर प्रश्न करने वाले को मूल चिन्ता होना समझे । जल या वायु तत्व के उदय से जीव विषयक चिन्ता और अग्नि तत्व से धातु या धन विषयक चिन्ता समझनी चाहिए । परन्तु आकाश तत्व के उदय में सर्व चिन्ता का अभाव बतावे ।।१८०।।

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदस्तोयवायुतः ।
तेजस्येव चतुष्पादो नभसा पादवर्जितः ।।१८१

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृथिवी तत्व से अनेक पाँव वाले जीव की, जल या वायु से दो पाँव वाले जीव (मनुष्य) की तथा तेज तत्व से चौपायों की चिन्ता समझे, परन्तु आकाश तत्व से बिना पाँव के जीव की चिन्ता समझनी चाहिए ।।१८१।।

कुजो वह्नी रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः ।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रप्रवाहक ।।१८२

सूर्य स्वर चलता हो तो अग्नि तत्व में मंगल, पृथिवी तत्व में रवि, जलतत्व में शनि और वायु तत्व में राहु की स्थिति समझनी चाहिए ।।१८२।।

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वीगुरुर्वातः सितोऽनल ।
वामनाड्यांस्थिताः सर्वेसर्वकार्येषुनिश्चिताः ।।१८३

चन्द्र स्वर चलता हो तो जल तत्व में चन्द्रमा, पृथिवी में बुध, वायु और बृहस्पति और अग्नि तत्व में शुक्र की स्थिति समझे । यह सब सभी कार्यों में उक्त तत्वों में निश्चय ही रहते हैं ।।१८३।।

पृथ्वी बुधो जलादिन्दुः शुक्रो वह्नी रविः कुजः ।
वायू राहुशनी व्योम गुरुरेवं प्रकीर्तितः ।।१८४

पृथिवी में बुध, जल में चन्द्रमा, अग्नि में सूर्य और मंगल, वायु में राहु और शनि तथा आकाश तत्व में बृहस्पति कहा जाता है ।।१८४।।

प्रवास विषयक प्रश्नोतर

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोऽनिले ।
तदासौ चलितो ज्ञेयः स्थानान्तरमपेक्षते ।।१८५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि प्रवास विषयक प्रश्न हो तो सूर्य के स्वर में राहु की स्थिति होने पर यह जानना चाहिए कि वह मनुष्य उस स्थान से भी अन्यत्र चल दिया है ।१८५।

आयाति वारुणे तत्वे तत्रैवास्ति शुभः क्षितौ ।
प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत् ।।१८६

प्रश्नकाल में जल तत्व का प्रवाह हो तो उनका परदेश से आगमन और पृथिवी तत्व का प्रवाह हो तो प्रवासो जहाँ गया है, वहाँ सुखपूर्वक है, वायु तत्व के प्रवाह से समझे कि अन्यत्र गया और अग्नितत्व से उसका मरना समझना चाहिए ।१८६।

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभं कार्यं जले तथा ।
आग्नेयेधातुविज्ञानंव्योम्निशून्यंविनिर्दिशेत् ।।१८७

प्रश्न के समय पृथिवो तत्व हो तो वृक्ष विषयक प्रश्न जाने। जल तत्व से शुभकार्य और अग्नितत्व से धातुज्ञान विषयक प्रश्न समझे। आकाश तत्व हो तो शून्य अर्थात् कुछ न होना कहे।१८७।

तुष्टिःपुष्टि रतिः क्रीडा जयहर्षौ धराजल ।
तेजोवाय्वोश्च सुप्ताक्षोज्वरकम्पः प्रवासिनः ।।१८८

यदि पृथिवो या जल तत्व हो तो प्रवासी को तुष्टि, पुष्टि, रति, क्रीड़ा, जप और हर्ष की प्राप्ति समझे। तेज या वायु तत्व हो तो उसका निद्रित होना या ज्वर से काँपना बतावे।१८८।

गतायुर्मृत्युराकाशो तत्वस्थाने प्रकीर्तिता ।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या देशिकै सदा ।।१८९

आकांश तत्व हो तो प्रवासी का मरण कहे। इस प्रकार तत्व स्थान में यह बारह प्रश्न कहे हैं, इन्हें प्रयत्नपूर्वक जानना चाहिए।१८९।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूर्वायां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ।।१९०

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओं में क्रम पूर्वक पृथिवी, जल, अग्नि और वायु को बलवान बतावे ।१९०।

पंचभूतात्मक देह वर्णन

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ।।१९१

हे वरानने! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाशयुक्त होने से इस देह को पञ्चभूतात्मक ही समझे ।१९१।

अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोमं चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पंचगुणा प्रोक्ता ब्रह्ममानेन भाषिम् ।।१९२

इस देह में अस्थि, माँस, त्वचा, नाडी और रोम यह पाँचों पृथिवी के गुण हैं, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का कहना है ।१९२।

शुक्रशोणितमज्जा च मूत्रं लाला च पंचमम् ।
आपः पंचगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।१९३

शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, लार यह पाँचों, ब्रह्मज्ञानियों ने जल के गुण बताये हैं ।१९३।

क्षुधा तृषा तथा निद्रा कांतिरालस्यमेव च ।
तेजः पचचगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।१९४

ब्रह्मज्ञानी पुरुष भूख, प्यास, निद्रा, क्रान्ति और आलस्य यह पाँच गुण तेज के बताते हैं ।१९४।

धावनं चलनं ग्रन्थः संकोचनप्रसारणे ।
वायोः पंचगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।१९५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दौड़ना, चलना, गाँठ पड़ना, संकोच और प्रसारण यह पाँचों, ब्रह्मज्ञानियों के अनुसार वायु के गुण हैं ।।१९५।।

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः ।
नभः पंचगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ।।१९६

राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह यह पाँच गुण आकाश के बताये हैं ।।१९६।।

शरीर में पंचभूतों का अंशभाग कथन

पृथ्व्याः पलानि पंचाशच्चत्त्वारिंशत्तथाम्भसः ।
अग्नेस्त्रिशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ।।१९७

शरीर में पृथिवी तत्व पचास पल, जल चालीस पल, अग्नि तीस पल, वायु बीस पल और आकाश दश पल होता है ।।१९७।।

पृथिव्यां चिरकालेन लाभश्चापः क्षणाद्भवेत् ।
जायते पवने स्वल्पः सिद्धोऽप्यग्नौ विनश्यति ।।१९८

पृथिवी तत्व के होने पर बहुत देर में लाभ, जल तत्व में क्षणभर में, वायु तत्व में स्वल्प लाभ और अग्नि तत्व में तो सिद्ध हुआ कार्य भी विनष्ट होता है ।।१९८।।

पृथ्व्या पंच ह्यपां वेदा गुणास्तेजो द्विवायुतः ।
नभस्येक गुणश्चैव तत्त्वज्ञानमिदं भवेत् ।।१९९

पृथिवी के पाँच गुण होते हैं । जल के चार, तेज के तीन, वायु के दो और आकाश का एक गुण होता है । यही तत्वों का ज्ञान है ।।१९९।।

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विदीर्णा पतिता धरा ।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ।।२००

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

फूत्कार करती हुई, फूटी, चिरी हुई तथा व्यर्थ पड़ी हुई पृथिवी सभी कार्यों में अवस्था के अनुरूप फल देता है ।।२००।।

पृथिवी तत्व के नक्षत्र

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठाऽनुराधा श्रवणं तथा ।
अभिजिदुत्तराषाढापृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ।।२०१

पृथिवी तत्व के सात नक्षत्र हैं—धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा अनुराधा, श्रवण अभिजित् और उत्तराषाढा ।२०१।

जल तत्व के नक्षत्र

पूर्वाषाढा तथाऽऽश्लेषा मूलमार्द्रा च रेवती ।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्त्वं शतभिषक् प्रिये ।।२०२

जलतत्व के पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा और सतभिषा, यह सात नक्षत्र ।२०२।

तेज तत्व के नक्षत्र

भरणी कृतिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुनी।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ।।२०३

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और स्वाती, यह सातों तेज के नक्षत्र हैं ।।२०३।।

वायुतत्व के नक्षत्र

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौ हस्तचित्रे पुनर्वसुः ।
अश्विनीमृगशीर्षे च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ।।२०४

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विशाखा, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशीर्ष, यह सात नक्षत्र वायु तत्व के हैं ।२०४।

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।

तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोतिशून्य शून्यं न संशयः ॥२०५

प्रवाहित नाड़ी की ओर बैठा हुआ जो दूत शुभ-अशुभ प्रश्न करे वह सब सिद्ध और शून्य में पूछे तो सब शून्य समझे, इसमें सशय नहीं है ।२०५।

पूर्णोऽपि निर्गमश्वासे सुतत्त्वेऽपि न सिद्धिदः ।

सूर्यश्चन्द्रोऽथवा नृणां संग्रहे सर्वसिद्धिदः ॥२०६

यदि सूर्य स्वर का प्रवाह पूर्ण रूप से हो और उसमें श्रेष्ठ तत्व भी हो तो उस समय पूछा हुआ कार्य सिद्धिदायक नहीं होता यदि सूर्य-चन्द्र दोनों सम्मिलित हों तो सर्व सिद्धि के देने वाले होते हैं ।२०६।

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः सुत्त्वे च धनंजयः ।

कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ॥२०७

श्रेष्ठ तत्वों से राम की और अर्जुन की विजय हुई, जबकि तत्वों के विपर्यय से कौरव मारे गए ।२०७।

जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथ वा गुरोः ।

केषांचिज्जायते तत्त्ववासना विमलात्मनाम् ॥२०८

जन्मान्तरों के संस्कार या गुरु की प्रसन्नता से तत्वज्ञान की उत्कण्ठा कुछ ही विमल आत्माओं को होती है ।२०८।

तत्वों के बीज एवं ध्यान कथन

लंबीजे धरणी ध्यायेच्चतुरस्रां सुपीतभाम् ।

सुगन्धां स्वर्णवर्णाभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम् ॥२०९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

'ल' बीज से स्वर्ण जैसी आभा वाले सुन्दर पीले वर्ण के चौकार और सुगन्ध युक्त पृथिवी तत्व का ध्यान करे। इससे देह में लाघवता की प्राप्ति होती है।२०९।

वंबीजं वारुणं ध्यायेजत्वमर्द्ध शशि प्रभम्।
क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम् ॥२१०

'व' अर्द्ध चन्द्र जैसे आकार में ध्यान करने योग्य जलतत्व का बीज है। इसके ध्यान से भूख-प्यास की निवृत्ति होती और जल में डूबे रहने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।२१०।

रंबीजमग्निजं ध्यायेत्त्रिकोणमरुणप्रभम्।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥२११

'र' बीज अग्नितत्व का त्रिकोणाकार लाल वर्ण का है। इसके ध्यान से अन्न-पान के अधिक भक्षण की सामर्थ्य प्राप्त होती है और धूप तथा अग्नि का ताप सहने में शक्त होता है।२११।

यंबीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम्।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा ॥२१२

'यं' बीज से वर्तुलाकार, श्याममल प्रभा वाले वायु तत्व का ध्यान करने वाले को पक्षी के समान आकाश में उड़ने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।२१२।

हंबीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम्।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥२१३

'हं' बीज निराकार अधिक प्रभायुक्त आकाश तत्व है। इसके ध्यान से त्रिकाल, ज्ञान तथा अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।२१३।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरज्ञानी नरो यत्रधनं नास्ति ततः परम् ।
गम्यते स्वरज्ञानेन ह्यनायासं फलं भवेत् ।।२१४

जहाँ स्वरज्ञानी हैं वहाँ उनसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ धन नहीं है। स्वर ज्ञान के अनुसार चलने वाले को अनायास ही फलमिल जाता है ।।२१४।।

त्रिकालज्ञान विषयक प्रश्न

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषयंचैव कथं भवति शंकर ।।२१५

पार्वतीजी ने कहा—हे देवदेव, हे महादेव ! हे शंकर ! स्वरोदय रूपी यह त्रिकाल विषयक महाज्ञान कैसे प्राप्त होता है ? ।।२१५।।

शिवजी द्वारा समाधान

अर्थकालजयप्रश्न शुभाशुभमिति त्रिधा ।
एतत्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुंदरि ।।२१६

शिवजी बोले—हे सुन्दरि स्वरज्ञान के बिना अर्थ, काल, जय आदि तीन प्रकार का शुभाशुभ वाला त्रिकाल ज्ञान संभव नहीं ।।२१६।।

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ ।
तत्त्वे सुभिक्षादुर्भिक्षो तत्त्वं त्रिपदमुच्यते ।।२१७

शुभाशुभ और जय पराजय तत्व के ही अधीन हैं तथा सुभिक्ष-दुर्भिक्ष भी तत्व के अधीन होने से तत्व को ही त्रिपाद कहते हैं ।।२१७।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मित्र विषयक प्रश्न

देव–देव महादेव सर्व–संसारसागरे ।
किं नाराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ॥२१८

पार्वतीजी बोलीं–हे देवदेव महादेव ! इस सर्व संसार संसार में मनुष्यों का परम मित्र और सर्वार्थ साधक क्या है ? ।२१८।

प्राण का मैत्रीभाव कथन

प्राण एव परं मित्रं प्राण एवं परः सखा ।
प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ॥२१९

शिवजी बोले—हे श्रेष्ठ मुख वाली ! प्राण हो परम मित्र और सखा है तथा प्राण के तुल्य कोई बन्धु नहीं है ।२१९।

वायु की स्थिति विषयक प्रश्न

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः ।
तत्त्वेषु संचरन्प्राणी जायते योगिभिःकथम् ॥२२०

पार्वतोजी ने कहा—प्राण में वायु कैसे स्थित है ? शरीर प्राणरूप क्यों होता है ? तत्वों में संचरण करने वाले प्राण का योगियों को कैसे ज्ञान है ? ।२२०।

प्राण प्रमाण वर्णन

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः ॥२२१

शिवजी ने कहा—कायारूपी नगर में स्थित प्राणवायु उसका रक्षपाल है और वह प्राण प्रवेश काल में दश अंगुल का और निर्मल काल में बारह अंगुल का होता है ।२२१।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गमने तु चतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तु धावने ।
मैथुने पञ्चषष्टिश्च शयने च शतांगुलम् ॥२२२

गमन के समय उस वायु का परिमाण चौबीस अंगुल का, भागते समय बयालीस अंगुल का, मैथुन काल में पैंसठ अंगुल का और शयन काल में शतांगुल का होता है ।२२२।

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद्द्वादशांगुला ।
भोजने वमने चैव गतिरष्टादशांगुला ॥२२३

हे देवि ! प्राण की स्वाभाविक गति बारह अंगुल होती है तथा भोजन या वमन के समय उसका परिमाण अठारह अंगुल का होता है ॥२२३॥

एकांगुल कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता ।
आनन्दस्तुद्वितीये स्यात्कविशक्ति स्तृतीयके ॥२२४

यदि योगी प्राण की गति को एक अंगुल घटा ले तो निष्कामता, दो अंगुल घटावे तो आनन्द और तीन अंगुल कम कर ले तो कवित्व शक्ति प्राप्त होती है ॥२२४॥

वाचासिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पंचमे ।
षष्ठे त्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे ॥२२५

चार अंगुल न्यून कर ले तो वाचा सिद्धि, पाँच अंगुल कम कर ले तो आकाश गमन और सात अंगुल कम करने से प्रचण्ड वेग की प्राप्ति होती है ॥२ ५॥

अष्टमे सिद्धियश्चैव नवमे निधयो नव ।
दशमे दशमूर्तीश्च छाया नैकादशे भवेत् ॥२२६

आठ अंगुल घटाने से अणिमादि सिद्धि, नौ, अंगुल घटाने से नौ निधि, दश अंगुल कम करने से दशों मूर्ति और ग्यारह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अंगुल घटाने से शरीर की छाया का भी अभाव हो जाता है ॥२२६॥

द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिवेत् ।
अनखाग्रं प्राणपूर्णं कस्य भक्ष्यं च भोजनम् ॥२२७

प्राण की गति बारह अंगुल कम करने से हंसगति और गंगामृत के रसपान की शक्ति आती है। यदि शिखा से नख पर्यन्त प्राण को शरीर में भर ले तो भव्य भोजन की निवृत्त हो जाती है ॥२२७॥

एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशस्त्रकोटिभिः ॥२२८

इस प्रकार यह सर्व कार्यों के फल देने वाली प्राण की विधि बताई है, जिसका ज्ञान गुरुमुख से ही संभव है, अन्य विद्या या करोड़ों शास्त्रों से भी नहीं हो सकता है ॥२२८॥

प्रातश्चन्द्रो रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते ।
मध्याह्नान्मध्यरात्राच्च परतस्तु प्रवर्तते ॥२२९

यदि दैववश प्रातःकाल चन्द्रस्वर और सायंकाल सूर्य स्वर उपलब्ध न हो तो मध्याह्न या मध्य रात्रि के समय अवश्य मिल जाते हैं ॥२२९॥

चन्द्रस्वर के लाभ

दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
वहन्नाड्यागतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२३०

यदि दूर देश में युद्ध हो तो चन्द्र स्वर और निकट में हो तो सूर्य स्वर जय कराने वाला होता है। यदि प्रवाहित नाड़ी की ओर का पाँव आगे रख कर यात्रा करे तो सर्व सिद्धि प्राप्त होती है ॥२३०॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके।
शुभकार्याणिसिद्धिध्यन्तिचंद्रवाहेषुसर्वदा ॥२३१

यात्रा के आरम्भ में, विवाह या नगरादि में प्रवेश के अवसर पर या अन्य शुभ कार्यों में चन्द्रस्वर हो तो सदा सिद्धि देता है।२३१।

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्त्वे च युक्ते
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम्।
स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण
प्रभवति नच विघ्नं केशवस्यापि लोके ॥२३२

यदि दैवयोग से अयन, तिथि, वार के स्वामी उदित हों तो उनके स्वर स्तम्भन से ही शत्रु सेना पर विजय प्राप्त होती है और विष्णु के लोक में भी कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता।२३२।

रक्ष जीवं रक्ष जीवं जीवांगे परिधाय च।
जीवो जपति यो युद्धे जीवंजयति मेदिनीम् ॥२३३

जीव अपने अङ्ग पर वस्त्र धारण कर 'जीवं रक्ष' इस मन्त्र का युद्ध में जप करे तो वह पुरुष जीवित रहकर सब पृथिवी को जीत लेता है।२३३।

गमन विषयक निर्देश व निषेध

भूमौ जले च कर्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेषु खे पुनर्नोभयेष्वपि ॥२३४

शान्ति कर्म में पृथिवी या जल तत्व होने पर यात्रा करे और उग्र कर्म में अग्नि और वायु तत्व हो तब गमन करे तथा आकाश तत्व में पहले कहे दोनों कर्मों में न जाय।२३४।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीवेन शास्त्रं बध्नीयाज्जीवेनैव विकासयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ॥२३५

जिस ओर का स्वर चलता हो उसी ओर शस्त्र धारण करता हुआ उसी हाथ से शस्त्र पकड़ कर गमन करे तो युद्ध से सदा जीत होती है ।२३५।

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।
समुत्तरे पद दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२३६

प्राणवायु का आकर्षण कर जो अश्वादि वाहन पर सवारी करे और दांया पाँव पहले रखे तो सभी कार्यों की सिद्धि होती है ।२३६।

पूर्णतत्व में स्थैर्य से भूमिजय

अपूर्णे शत्रुसामग्रीं पूर्णे वा स्वबलं तथा ।
कुरुते पूर्ण तत्त्वस्थो जयत्येको वसुन्धराम् ॥२३७

अपूर्ण स्वर में शत्रु की सामग्री का और पूर्ण स्वर में अपनी सामग्री का बल होने पर पूर्ण तत्वस्थ हुआ पुरुष धरती को अकेला ही जीत लेता है ।२३७।

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवता ।
सम्मुखेऽपदिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ॥२३८

अङ्ग से जो नाड़ी प्रवाहित हो, उसमें उसी नाड़ी के देवता और दिशा सामने हो तो सब कार्यों का फल प्राप्त होता है ।२३८।

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशय ॥२३९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पहले मुद्रा करे और फिर युद्ध का आचरण करे। सर्प मुद्रा करने वाले को सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है ॥२३९॥

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे
भटाः समायान्ति च योद्धुकामाः।
समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतो
या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ॥२४०

चन्द्र या सूर्य स्वर के संचार काल में तत्ववेत्ताओं को वायु तत्व प्रवाहित होता प्रतीत हो तो जय और आकाश तत्व प्रतीत हो तो पराजय अथवा कार्य नाश होगा ॥२४०॥

यां दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत्।
जयत्येव न संदेहः शक्रोऽपि यदि चाग्रतः ॥२४१

जिस दशा का वायु तत्त्व चले उसी दिशा में सेना को युद्ध के लिए बढ़ावे तो इन्द्र पर भी निःसंदेह युद्ध प्राप्त होता है ॥२४१॥

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंगे प्राणमेव च।
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् ॥२४२

जिस नाड़ी का वायु तत्व प्रवाहित हो उसी अंग से प्राण-वायु को कान तक खींचकर चले तो इन्द्र पर भी विजय प्राप्त हो सकती है ॥२४२॥

प्रतिपक्षप्रहारेभ्य पूर्णाङ्गं योऽभिरक्षति।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ॥२४३

जिस योद्धा का इस प्रकार से पूर्णांग रक्षित हो, वह प्रतिपक्ष के प्रहारों से बचता है और उसकी शक्ति बलवान् रिपुओं द्वारा भी नष्ट नहीं की जा सकती है ॥२४३॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अंगुष्ठतर्जनीवंशे पादांगुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्त्तव्यो लक्षयोद्धुजयो भवेद् ।।२४४

अँगूठा और तर्जनी के मूल में तथा पाँव के अँगूठे में युक्त काल में ध्वनि करे तो लाखों वीरों को जीतने में समर्थ होता है ।।२४०।।

निशाकरे रवौ चारे मध्ये यस्य समीरणः ।
स्थितो रक्षेद्दिगन्तानि जयकांक्षीगतः सदा ।।२४५

चन्द्र या सूर्य के प्रवाह में वायु तत्व के प्रवाह काल में गमन करे तो दिगन्तों की रक्षा करने में समर्थ होता हुआ सदा विजयी होता है ।।२४५।।

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम् ।
तस्यार्थः सिद्धिमायाति निर्गमेनैव सुंदरि ।।२४६

हे सुन्दरि ! श्वास के प्रवेश काल में दूत यदि अपने मुख से इच्छित बतावे तो उसे गमन करते ही अर्थ सिद्ध होतो है ।२४६।

लाभादीयपि कार्याणि पृष्टानि कीर्तितानि च ।
जीवेविशतिसिद्ध्यंतिहानिर्निः सरणे भवेत् ।।२४७

पूछे और कहे हुए सभी कार्य श्वास लेते समय सिद्ध होते और श्वास छोड़ते समय नष्ट होते हैं ।।२४७।।

तीन नाड़ियों की तीन गति

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते ।
कुम्भकोयुद्धकालेच तिस्त्रीनाडयस्त्रयीगतिः।।२४८

पुरुष का दाँया और स्त्री का बाँया स्वर श्रेष्ठ होता है। युद्धकाल में कुम्भक उत्तम है। इस प्रकार तीनों नाड़ियों की तीन गति होती हैं ।।२४८।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् ।
सोऽहं हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ॥२४९

हकार और सकार के भेद का ज्ञान न होने पर स्वर ज्ञान कैसे हो सकता है ? सोऽहं और हंस के ज्ञान से सदा जय प्राप्त होती है ।२४९।

शून्यांगं पूरितं कृत्वा जीवांगो गोपयेज्जयम् ।
जीवांगे घातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा ॥२५०

शून्य अङ्ग को पूरित करके जीव के अङ्ग की रक्षा करे तो जय लाभ होता है, क्योंकि जीव के अङ्ग का ही क्षय होता है और शून्य अङ्ग सदा रक्षा करने वाला होता है ।२५०।

पूर्णस्वर में रक्षा, शून्य स्वर में घात

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
पूर्णे घातो न जायेत शून्ये घातं विनिर्दिशेत् ॥२५१

प्रश्न करने वाला यदि बाँयी या दाँयी ओर बैठ कर प्रश्न करे तो उस समय पूर्ण स्वर हो तो घात न होना और शून्य हो तो घात होना बतावे ।२५१।

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
ऊरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थाने च वायुना ॥२५२

प्रश्नकाल में यदि उदर में पृथिवी तत्व, पाँवों में जल तत्व, जंघाओं में अग्नि तत्व और हाथों में वायु तत्व हो तो घात होना समझे ।२५२।

शिरसि व्योमतत्त्वे च ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।
एवं पंचविधो घातः स्वशास्त्रे प्रकाशितः ॥२५३

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

आकाश तत्व का प्रवाह हो तो शिर में घात होने का निर्णय जाने। इस प्रकार स्वर शास्त्र में पाँच प्रकार का घात प्रकट किया गया है ।।२५३।।

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ।।२५४

युद्धकाल में चन्द्र स्वर चले तो अपने राज्य में रक्षा-रत रहता हुआ राजा आक्रमणकारी को निश्चित रूप से हराता है और सूर्य स्वर चले तो आक्रमणकारी जीतता है ।।२५४।।

जयमध्ये तु संदेहे नाडीमध्यं तु लक्षयेत् ।
सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसंकटः ।।२५५

यदि जय-प्राप्ति में सन्देह हो तो नाड़ी के मध्य में देखना चाहिए। यदि प्राणवायु सुषुम्ना में चले तो युद्ध में शत्रु को संकट होता है ।।२५५।।

यस्या नाड्या भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत् ।
तदाऽसोजयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।।२५६

युद्ध काल में जिस नाड़ी का संचार हो उसी दिशा में खड़ा हो तो उसे जयलाभ होता है, इसमें विचार की बात नहीं है ।।२५६।।

वामनाडी संचार से युद्ध में विजय

यदि संग्रामकाले तु वामनाडी सदा वहेत् ।
स्थायिनोविजयं विद्याद्रिपुवश्योदयोऽपिच ।।२५७

यदि युद्धकाल में वाम नाड़ी बहे तो जिस पर आक्रमण हो उसी की विजय और आक्रमणकारी का शत्रु के वश में पड़ना समझे ।।२५७।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्त व्यावृतो वहेत् ।
तदा यायिजयं विद्यात्सदेवासुर मानवे ॥२५८

संग्राम काल में निरन्तर सूर्य स्वर बहे तो देवता, असुर या मानव के संग्राम में यायी अर्थात् आक्रमणकारी की जीत होगी ॥२५८॥

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः ।
स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ॥२५९

वाम नाड़ी के संचरण के समय युद्ध में प्रविष्ट होने वाले का शत्रुगण हरण करते हैं। सुषुम्ना के प्रवाह में गमन करे तो स्थान (युद्ध विराम) होता है। सूर्य स्वर के प्रवाह में गमन करने से विजय होती है ॥२५९॥

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः ।
रिक्ते चैवद्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ॥२६०

एक ही समय में युद्ध विषयक दो प्रश्न हों और उस समय पूर्ण स्वर हो तो पहिले की जीत और रिक्त स्वर वहता हो तो दूसरे की जीत होती है, इससे अन्यथा नहीं होता ॥२६०॥

पूर्णनाड़ीगतः पृष्ठे शून्यांगं च तदाग्रतः ।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥२६१

पूर्ण नाड़ी के समय युद्ध में जाने से शत्रु पीठ दिखाता है और शून्यांग हो तो शत्रु सामने आता है तथा शून्य स्थान में किया गया शत्रु निःसंदेह मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२६१॥

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत् ।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ॥२६२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाम भाग में बैठकर प्रश्न करने वाले के प्रश्न के सम अक्षर हों तो विजय और विषम अक्षर हों तो पराजय होती है। यदि दाँयी ओर बैठ कर प्रश्न करे तो विषमाक्षर से जय और सम अक्षर से पराजय होना समझे ॥२६२॥

यदा पृच्छति चन्द्रश्च तदा सन्धानमादिशेत् ।
पृच्छेद्यदा तु सूर्यस्य तदा जानीहि विग्रहम् ॥२६३

प्रश्न काल में चन्द्र स्वर चले तो सन्धि और सूर्य स्वर चले तो युद्ध होना बतावे ॥२६३॥

पार्थिवे च समंयुद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे ।
युद्धे हि तैजसो भंगो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ॥२६४

पृथिवी तत्व में युद्धारम्भ हो तो युद्ध में दोनों पक्षों में समानता रहती है। जल तत्व होने पर जयलाभ, तेजतत्व होने पर नाश और वायु एवं आकाश तत्व में मरण होता है ॥२६४॥

निमित्तकप्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यत्नेनबुद्धिमान् ॥२६५

यदि प्रमादादि किसी कारण से प्रश्नकाल में दाँये-बाँये स्वर का ज्ञान न हो तो बुद्धिमान् पुरुष को यत्न पूर्वक ऐसा करना चाहिए कि—॥२६५॥

पुष्पपात से फल ज्ञान

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयत्।
पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्यं वा तत्परं भवेत् ॥२६६

निश्चल धारणा करके धरती पर हाथ से पुष्प डाल दे, वह पुरुष जिस ओर गिरे वह स्वर पूर्ण और जिधर न गिरे उधर शून्य समझे ॥२६६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तिष्ठन्नुपविशंश्चापि प्राणमाकर्षयन्निजम् ।
मनोभङ्गमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ।।२६७

खड़ा या बैठा हुआ जो मनुष्य निश्चल मन से अपने प्राणवायु का आकर्षण करता है, वह सभी कार्यों में सफल होता है ।।२६७।।

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
न शत्रु व्याधिचोराद्याःशून्यस्थानाशितुं क्षमाः।।२६८

शून्य अङ्ग में स्थिति होने पर काल, भयानक विविध शस्त्र, सर्प, शत्रु, व्याधि एव चोर आदि मनुष्य को नष्ट नहीं कर सकते ।।२६८।।

जीवेन स्थापयेद्वायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।
जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ।।२६९

जीव स्वर से वायु को स्थिर करे और इसी स्वर से वायु का आरम्भ करे और इसी स्वर से द्यूतक्रीड़ा का आरम्भ करे तो अवश्य ही विजय प्राप्त हो। ।२६९।।

स्वरज्ञानिबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इह लोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ।।२७०

स्वरज्ञानी के बल के सामन करोड़ प्रकार के बल भी निष्फल होते हैं, क्योंकि स्वरज्ञानी इहलोक परलोक में सदैव बली रहता है ।।२७०।।

दश शतायुतं लक्षं देशाधिपबलंक्वचित् ।
शतक्रतुसुरेन्द्राणां बलं कोटिगुणं भवेत् ।।२७१

मनुष्यों में किसी को दश, किसी को सौ, किसी को दस हजार किसी को लाख का और किसी को देश के अधिपत्य का

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बल होता है, वैसा ही करोड़ गुना बल स्वर का समझना चाहिए ॥२७१॥

यम-युद्ध में विजय विषयक प्रश्न

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्त्वया ।
यमयुद्धे सयुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ॥२७२

पार्वतीजी ने कहा—आपने मनुष्यों के परस्पर युद्ध में विजय प्राप्ति का वर्णन किया । अब यह बताइये कि यमराज से युद्ध उपस्थित होने पर मनुष्य की जीत कैसे हो सकती है ॥२७२॥

देवध्यान से सर्व लाभ कथन

ध्यायेद्देवं स्थिरो जीवं जुहुयाज्जीवसंगमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥२७३

शिवजी बोले—जो स्थिर मन से देवताओं का ध्यान करता हुआ मनुष्य कुम्भक के द्वारा प्राणवायु में जीव का होम करे उसे इष्टसिद्धि, विजय एवं महायाभ होता है ॥२७३॥

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं निराकारं ज्ञाने भवति तत्क्षणात् ॥२७४

निराकार से ही सम्पूर्ण साकार जगत् उत्पन्न हुआ है और निराकार (ब्रह्म) के ज्ञान से यह जगत् तत्क्षण साकार हो जाता है ॥ ७४॥

वशीकरण विषयक प्रश्न

नरयुद्धं यमयुद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर ।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ॥२७५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृथिवी का स्वाद मधुर, जल का कषैला, अग्नि का तीक्ष्ण, वायु का खट्टा और आकाश का कड़ुआ होता है ।२७५।

स्वकीया का वशीकरण कथन

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा रामा कतितेयं तपोधनैः ।।२७६

यदि पृथिवी या जल तत्व हो तो प्रवासी को तुष्टि, पुष्टि रति, क्रीड़ा, जप और हर्ष की प्राप्ति समझे । तेज या वायु तत्व हो तो उसका निद्रित होना या ज्वर से काँपना बतावे ।।२७६।।

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
क्षीणस्थाने गतो जीवो बालाजीवानुकारकः ।।२७७

यदि प्रवास विषयक प्रश्न हो तो सूर्य के स्वर में राहु की स्थिति होने पर यह जानना चाहिए कि वह मनुष्य उस स्थान से भी अन्यत्र चल दिया है ।२७७।

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ।।२७८

प्रश्नकाल में जल तत्व का प्रवाह हो तो उनका परदेश से आगमन और पृथिवी तत्व का प्रवाह हो तो प्रवासी जहाँ गया है, वहाँ सुखपूर्वक है, वायु तत्व के प्रवाह से समझे कि अन्यत्र गया और अग्नितत्व से उसका मरना समझना चाहिए ।।२७८।।

चन्द्रस्वरदान से नारी वशीकरण

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन्काले गते सति ।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ।।२७९

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उस समय के व्यतीत होने पर जो पुरुष अष्टाक्षर मन्त्र का जाप कर अपना चन्द्रस्वर स्त्री को देता है तो वह स्त्री तत्क्षण मोह को प्राप्त हो जाती है ॥२७९॥

शयने वा प्रसङ्गं वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा ।
यः सूर्येण पिबेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ॥२८०

शयनकाल या समागम काल अथवा स्पर्श करते समय जो पुरुष अपने सूर्य स्वर द्वारा स्त्री के चन्द्रस्वर का पान करता है, वह कामदेव के समान मोहित करने वाला होता है ॥२८०॥

शिव आलिङ्गयतेशक्त्याप्रसंगे दक्षिणेऽपि वा ।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनीशतम् ॥२८१

समागम काल में शिव (सूर्य) स्वर से शक्ति (चन्द्र) स्वर का मिलन हो जाय या पुरुष अपना चन्द्र स्वर स्त्री को प्रदान कर दे तो वह सौ कामनियों को मोहित करने में समर्थ होता है ॥२८१॥

स्त्रीवशीकरण का प्रभाव शाली उपाय

नव सप्त त्रयः पञ्च वारान्तसङ्गस्तु सूर्यभे ।
चन्द्रे द्वितुर्यषट्कृत्वोवश्याभवतिकामिनी ॥२८२

अपने सूर्य स्वर में स्त्री का चन्द्र स्वर लेने के पश्चात् नौ, सात, तीन या पाँच बार संग हो, अथवा स्त्री के चन्द्र स्वर में अपना सूर्य स्वर देने पर दो, चार या छः बार संग हो जाय तो वह स्त्री वश में हो जाती है ॥२८२॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा बारंबारमिदं चरेत् ॥२८३

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपने सूर्य-चन्द्र स्वरों को सर्प की गति से आकृष्ट कर अधरोष्ठों पर मुख में मुद्रा युक्त करके बारम्बार चन्द्र सूर्य को सयुक्त करे ।२८३।

आप्राणमिति पद्मश्च यावन्निद्रावशं गता ।
पश्चाज्जागर्ति वेलायां चोष्यते गलचक्षुषी ।।२८४

जब तक स्त्री निद्रित रहे, तब तक उसके मुख कमल का उक्त प्रकार से पान करे और जब वह जागे तब उसके कण्ठ और नेत्रों का चुम्बन करे ।२८४।

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः ।
इदंनवाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा पारमेश्वरी ।।२८५

इस प्रकार कामी पुरुष सब स्त्रियों को वश में कर सकता है परन्तु हे परमेश्वरि ! मेरी यह आज्ञा है कि यह वशीकरण विधि किसी अनधिकारी को न बतावे ।२८५।

गर्भ प्रकरण

ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत् ।
सूर्याचन्द्रमससोर्योगे सेवनात्पुत्रसम्भवः ।।२८६

ऋतुकाल के पाँचवें दिन पुरुष का सूर्य स्वर और स्त्री का चन्द्र स्वर चले तो उस समय समागम करने से पुत्रोत्पत्ति होती है ।२८६।

शङ्खवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्व्यापो वहते यदा ।
भर्तुरेवं वदेद्वाक्यं दर्पं देहि त्रिभिर्वचः ।।२८७

जब पृथिवी और जल तत्व बहते हों तब शंखवल्ली को गोदुग्ध में घोटकर स्त्री को पिलावे तब स्त्री अपने पति से तीन बार समागम का निवेदन करे ।२८७।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ।
रूपलावण्यसंपन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥२८८

ऋतु स्नान के पश्चात् इस प्रकार शंखवल्ली का पान करके संसर्ग करने से रूप लावण्य सम्पन्न एवं मनुष्यों में सिंह के समान बली पुत्र होता है ॥२२८॥

सुषुम्नासूर्यवाहेन ऋतुदानं तु योजयेत् ।
अंगहीनः पुमान्यस्तु जायतेऽत्रकुविग्रहः ॥२८९

यदि सुषुम्ना के साथ सूर्य स्वर बहने के समय ऋतुदान करता है तो अंगहीन और कुरूप पुत्र की प्राप्ति होती है ॥२८९॥

वन्ध्या को भी पुत्र प्राप्ति

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्नितत्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥२९०

ऋतुकाल के अनन्तर विषम दिनों में पुरुष का स्वर दिन-रात चले और स्त्री के चन्द्र स्वर के संचार सहित पृथिवी, जल और अग्नि तत्व होने पर गर्भाधान होने पर वन्ध्या को भी पुत्र होता है ॥२९०॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।
उभयोः संगमे प्राप्तो वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥२९१

यदि ऋतु के आरम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर और स्त्री का चन्द्र स्वर चले और दोनों का संगम हो तो वन्ध्या भी पुत्रवती होती है ॥२९१॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसा शुक्रान्ते च सुधाकरः ।
अनेन क्रमयोगेन नादत्ते देवदारुकम् ॥२९२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि ऋतु के आरम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर चले और शुक्रपात के अनन्तर चन्द्र स्वर चलने लगे तो इस क्रम से गर्भधारण नहीं होता ॥२९२॥

चन्द्रनाडी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥२९३

यदि प्रश्न के समय चन्द्र नाड़ी चले तो गर्भ में कन्या और सूर्य नाडी चले तो पुत्र होता है। परन्तु दोनों ही स्वर चलें तो गर्भपात होजाता है ॥२९३॥

अपत्य प्राप्ति में तत्वों का विभिन्न प्रभाव

पृथ्वी पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभञ्जने ।
तेजसि गर्भपातः स्यान्नभस्यापि नपुंसकः ॥२९४

प्रश्नकाल में पृथिवी तत्व होने पर कन्या, जलतत्व होने पर पुत्र, वायु तत्व होने पर भी कन्या, तेज तत्व होने पर गर्भपात और आकाशतत्व होने पर नपुंसक की उत्पत्ति होती है ॥२९४॥

चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यमार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णः पुत्रः प्रजायते ॥२९५

चन्द्रस्वर हो तो कन्या, सूर्य स्वर हो तो पुत्र, सुषुम्ना स्वर हो तो नपुंसक और प्रश्न कर्त्ता के पूर्णांग हों तो पुत्र होता है ॥२९५॥

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे ।
तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तत्तु सुन्दरि ॥२९६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हे सुन्दरि ! प्रश्नकर्ता के अंग शून्य हों तो शून्य, दो स्वर हों तो युग्म और स्वर-संक्रमण या सुषुम्ना स्वर हो तो तत्ववेताओं के अनुसार गर्भपात होता है ।।२९६।।

गर्भाधानं मारुते स्याच्च दुःखी
दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः ।
गर्भस्रावः स्वल्पजीवश्च वह्नौ
भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ।।२९७

वायुतत्व में गर्भाधान हो तो दुःखमय, जलतत्व में हो तो दिशाओं में प्रसिद्ध और सुखी, अग्नि तत्व में हो तो गर्भस्राव या अल्पजीवी सन्तान और पृथिवी तत्व में हो तो भोगी, भव्य और धनी पुत्र होता है ।।२९७।।

धनवान्सौख्ययुक्तश्च भोगवानार्थः संस्थितिः ।
स्यान्नित्यंवारुणेतत्वेव्योम्निगर्भोविनश्यति ।।२९८

जलतत्व में गर्भाधान होने पर धनवान, सौख्यवान्, भोगवान् और धन से सम्पन्न रहने वाला पुत्र होता है । यदि आकाश तत्व में हो तो गर्भ नष्ट होता है ।।२९८।।

माहेन्द्रे सुसुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत् ।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जातमात्रस्यवामृतिः ।।२९९

पृथिवी तत्व में गर्भाधान हो तो पुत्र, जलतत्व में हो तो पुत्री होती है । शेष तत्व में होने से गर्भहानि या जन्म लेते ही मृत्यु होती है ।।२९९।।

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः ।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदशास्त्रकोटिभिः ।।३००

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सूर्य स्वर के मध्य या चन्द्र स्वर के मध्य में सूर्य की गति को गुरु से शीघ्र जान ले, क्योंकि इसका ज्ञान वेद और करोड़ शास्त्रों से भी नहीं हो सकता ।।३००।।

संवत्सर प्रकरण

चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रातस्तत्वविभेदतः ।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे ।।३०१

चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा में प्रातःकाल तत्वभेद के ज्ञाता योगी दक्षिणायन और उत्तरायण का फल अवलोकन करे ।३०१।

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽत्र तत्वतः ।
पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम् ।।३०२

चन्द्रस्वर के उदयकाल में पृथिवी, जल या वायुतत्व बहे तो सब प्रकार के अन्न का सुभिक्ष होता है ।।३०२।

तेजोव्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्वतः ।
एवं तत्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ।।३०३

यदि चन्द्रस्वर में अग्नि और आकाश तत्व चलें तो घोर दुर्भिक्ष होता है । इसी प्रकार वर्ष, मास और दिनों में भी सभी तत्वों का फल समझे ।।३०३।।

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु ।
देशभंगमहारोगक्लेशकष्टादि दुःखदा ।।३०४

मध्यमा नाड़ी सब कर्मों में क्रूर और दुष्ट होती है और देश-भंग, महारोग, क्लेश, कष्टादि दुःखों को दिया करती है ।।३०४।।

मेषसंक्रान्तिवेलायां स्वरवेदं विचारयेत् ।
संवत्सरफलंब्रूयाल्लोकानां तत्वचिन्तकः ।।३०५

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मेष संक्रान्ति के समय स्वरभेद का विचार करे तो वह तत्व चिन्तन करने वाला पुरुष संवत्सर का फल बताने में समर्थ होता है ॥३०५॥

मेष संक्रान्ति से काल-फल का ज्ञान

पृथिव्यादिकतत्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।
शोभनं च यथा दुष्टंव्योममारुतवह्निभिः ॥३०६

इसी प्रकार पृथिवी आदि तत्वों से दिवस, मास और वर्ष का शुभ फल समझे तथा आकाश, वायु और तेज तत्वों से दुष्ट फल समझे ॥३०६॥

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिः स्याद्बहुसस्या वसुन्धरा ।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्वं वहेद्यदि ॥३०७

मेष संक्रान्ति में पृथिवी तत्व चलने पर सुभिक्ष, राष्ट्रवृद्धि, अत्यन्त अन्न, अतिवृष्टि और सौख्य होता है ॥३०७॥

अतिवृष्टि सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च ।
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्वं चैववेद्यदि ॥३०८

उस दिन जल तत्व के बहने पर अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सौख्य, अति अन्न तथा कृषि की अधिकता होती है ॥३०८॥

अग्नितत्व के प्रवाह से दुर्भिक्ष

दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति ।
अल्पादल्पतरा वृष्टिराग्नतत्वं वहेद्यदि ॥३०९

यदि अग्नि तत्व बहे तो दुर्भिक्ष, राष्ट्र भंगउत्पत्ति का विनाश और अत्यल्प वृष्टि होती है ॥३०९॥

उत्पादोपद्रवा भीतिरल्पा वृद्धिः स्युरीतयः ।
मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्वं वहेद्यदि ॥३१०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि वायु तत्व वहता हो तो उत्पात, उपद्रव, भीति, अल्प वृष्टि, ईति आदि होती हैं ।।३१०।।

मेषसंक्रांतिवेलायां व्योमतत्वं वहेद्यदि ।
तत्रापि शून्यता ज्ञेयासस्यदीनांना सुखस्य च ।।३११

यदि आकाश तत्व प्रवाहित हो तो अन्नादि एवं सौख्य की शून्यता समझनी चाहिए ।।३११।।

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्वेन सिध्यति ।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथाभूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ।।३१२।।

श्वास के पूर्ण प्रवेश से तत्व के द्वारा अन्न की सिद्धि होती है। उस समय सूर्य या चन्द्र स्वर विपरीत चले तो अन्न-संग्रह सिद्धि देने वाला होता है ।।३१२।।

विषमे वह्नितत्वं स्याज्जायते केवलं नभः ।
तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहो द्विमासे च महर्घता ।।३१३।।

यदि अग्नि तत्व विषम स्वर में या आकाश तत्व में हो तो वस्तुओं का संग्रह करे, क्योंकि दो मास में ही भाव-वृद्धि हो जाती है ।।३१३।।

रवौ संक्रमते नाडी चन्द्रमन्ते प्रसर्पिता ।
खनिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ।।३१४।।

यदि रात्रि में सूर्यनाडी चले और प्रातःकाल चन्द्र नाडी का प्रवाह हो तथा आकाश, वायु और अग्नि तत्व का भी योग हो तो भूतल पर घोर अनर्थ होते हैं ।।३१४।।

रोग प्रकरण

महीतत्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः ।
तेजसि खेटवाटीस्था शाकिनी पितृदोषतः ।।३१५।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रश्नकाल में पृथिवी तत्व का प्रवाह होने पर प्रारब्ध का रोग, जल तत्व का प्रवाह होने पर जलमातृका (पानीझरा) और तेज तत्व के प्रवाह से खेटवाटी में स्थित शाकिनी का अथवा पैतृक दोष का रोग समझना चाहिए ।।३१५।।

आदौशून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णो विशेद्यदि ।
मूर्च्छितोऽपिध्रुवं जीवेद्यदर्थं परिपृच्छति ।।३१६।।

यदि प्रश्नकर्त्ता दूत पहले शून्य अंग की ओर से आकर पूर्ण अंग की ओर बैठ जाय तो पूछने पर (उत्तर दे कि) मूर्छित हुआ रोगी भी अवश्य जीवित हो जायगा ।।३१६।।

यस्मिन्नङ्गे स्थितो जीवस्तत्रस्थःपरिपृच्छति ।
तदा जीवति जीवो सौ यदि रोगैरुपद्रुतः ।।३१७।।

जिस अंग में जीव स्थित हो उस अंग की ओर बैठे हुए प्रश्न करे तो रोग के उपद्रव से पीड़ित भी जीवित हो जायगा ।।३१७।।

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत् ।।३१८।।

यदि दक्षिण नाड़ी का वायु बहे और दूत रौद्र अक्षर कहे तो वह जीव जीवित रहेगा तथा चन्द्र स्वर होगा तो समान फल होगा ।।३१८।।

जीवाकारं च वा धृत्वा जावाकारं विलोक्य च ।
जीवस्थोरजीवितप्रश्नेतस्याज्जीवीतंफलम् ।।३१९।।

जीवाकार को धारण कर और जीवाकार का अवलोकन कर जीव में स्थित दूत जीवन विषयक प्रश्न करे तो रोगी जीवित रहता है ।।३१९।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वामचारे तथा दक्ष प्रवेशे यत्र वाहने ।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ।।३२०

इडा और पिंगला दोनों के चलने या प्रविष्ट होने के समय दूत प्रश्न करे तो सिद्धि में संशय नहीं है ।।३२०।।

प्रश्ने चाधःस्थितो जीवो नूनं जीवोहि जीवति ।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम्।।३२१

प्रश्नकाल में दूत अधोभाग में स्थित हो तो रोगी अवश्य जीवित रहेगा और ऊर्ध्वभाग में स्थित होने पर मृत्यु को प्राप्त होगा ।।३२१।।

रिक्त नाडी, विषम अक्षर का विपरीत फल

विपरीताक्षरप्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ।।३२२

सुषुम्ना नाड़ी का उदय हो और प्रश्न करने वाला रिक्त नाड़ी में विषम अक्षर वाला प्रश्न करे तो विपरीत फल समझना चाहिए ।।३२२।।

चन्द्रस्थाने स्थितो जीव सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।
तदा प्राणवियुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ।।३२३

यदि अपना जीव (प्राणवायु) चन्द्र स्थान में स्थित हो, प्रश्नकर्त्ता सूर्य स्थान में हो तो सौ वैद्यों द्वारा चिकित्सा किया जाता हुआ रोगी भी मरण को प्राप्त होता है ।।३२३।।

पिङ्गलायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति ।
तदाऽपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ।।३२४

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्राण पिंगला में और दूत वामभाग में रह कर प्रश्न करे तो महादेव के रक्षा करने पर भी रोगी की मृत्यु हो जायगी ।३२४।

एकस्य भूतस्य विपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ।
तयोर्द्वयोर्बन्धुहृद्विपत्तिः पक्षद्वये व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ।३२५

एक भूत भी विपरीत हो जाय तो भी रोग कुपित होता है, दो तत्वों के विपरीत होने पर बन्धु और मित्रों से संकट प्राप्त होता है। दो पक्ष तक व्यत्यय रहे तो मृत्यु हो जाती है ।।३२५।।

काल प्रकरण

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ।।३२६

मास, पक्ष और वर्ष के क्रम से विद्वान् पुरुष को वायु के संचार के वशीभूत होकर मरणकाल की परीक्षा करनी चाहिए ।।३२६।।

पञ्चभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।
रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणी जीवः स्थिरो भवेत् ।।३२७

इस पंचभूतात्मक शरीर रूपी दीपक को शिव रूपी तैल से सिंचित कर सूर्य रूपी वायु से रक्षा करने वाले का जीव (प्राण) स्थिर हो जाता है ।३२७।

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि ।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वंचिते ।।३२८

जो प्राणवायु को बद्ध करके सूर्य स्वर को बाँध लेता है, वह ऐसे अभ्यास के द्वारा सूर्य-काल को भी बाँध कर जीवित रहता है ।।३२८।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चन्द्राश्रय से अमरत्व-प्राप्ति

गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् ।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ॥३२९॥

इस प्रकार का अभ्यास करने वाले के शरीर रूपी कमल को आकाश (ब्रह्मरन्ध्र) से स्रवित होता हुआ चन्द्रामृत सींचता है, जिससे वह योगी अमर होजाता है ॥३२९॥

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवा दिवाकरः ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं सयोगी नात्रसंशयः ॥३३०॥

यदि रात्रि में चन्द्र स्वर और दिन से सूर्यस्वर के चलने को जो रोकता है, वह अभ्यास में तत्पर पुरुष योगी ही है. इसमें संशय नहीं ॥३३०॥

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ।
तदा तस्य भवेत्मृत्युः सम्पूर्णे वत्सरत्रये ॥३३१॥

जिसका प्राणवायु दिन-रात एक स्थान में बहे तो उसकी तीन वर्ष में मृत्यु हो जाती है ॥३३१॥

अहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः ।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥३३२॥

जिससे श्वास की गति पिंगला में दो दिन-रात रहे उसका जीवन तत्ववेत्ताओं ने दो वर्ष का बताया है ॥३३२॥

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदति मनोषिण ॥३३३॥

जिसका प्राणवायु एक ही नासापुट में तीन रात्रि पर्यन्त स्थित रहता हुआ चले उसकी आयु मनीषियों ने एक वर्ष ही बताई है ॥३३३॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम् ।
जानीयात्तस्यवैमृत्युः षण्मासाभ्यंतरेभवेत् ॥३३४॥

जिसका रात्रि में चन्द्र स्वर और दिन में सूर्य स्वर निरन्तर चले उसकी मृत्यु छः मास में हो जाती है ॥३३४॥

लक्ष्यं लक्षितलक्षणेन सलि(ला)भानुर्यदा दृश्यते
क्षोणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरःषट्त्रिद्विमासैकतः ।
मध्यं छिद्रमिदं भवेद्दशदिन धूमाकुलं तद्दिने
सर्वज्ञैरपि भाषितं मुनिवरैरायुःप्रमाणंस्फुटम् ॥३३५॥

यदि जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब क्षीण अर्थात् दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व में कटा हुआ दिखाई दे तो वह क्रमशः छः मास, तीन, दो या एक मास जीवित रहता है। यदि प्रतिबिम्ब के मध्य में छेद दिखाई दे तो दश दिन का जीवन और धुँआ-सा दिखाई दे तो उसी दिन मरण जानना, यह सर्वज्ञ मुनियों का वचन है ॥३३५॥

दूतः कृष्णकषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो मुण्डितः ।
तैलाभ्यक्तशरीररज्जुककरो दीनोऽश्रुपूर्णोत्तरः ॥
भस्मांगारकपालपाशमुसलो सूर्यास्त-मायाति यः
काली शून्यपदस्थितो गतयुतः कालानलस्याद्दतः॥३३६

यदि प्रश्नकर्त्ता दूत कृष्ण या भगवे रंग के वस्त्र पहिन कर आवे और उसके दाँतों में क्षत हो, मुंडित हो, तैल की मालिश किये हुए हो, हाथ में रस्सी लिये, दीन, अश्रुपूर्ण हो, अस्फुट वचन बोलता हो, भस्म रमाये हुए, शृंगार, कपाल और मूसल हाथ में हो, नंगे पाँव सूर्यास्त काल में आकर प्रश्न करे तो रोगी का काल के मुख में जाना समझे ॥३३६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सन्निपात के पूर्वलक्षण

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताग्रलक्षणम् ॥३३७

जिसका चित्त अकस्मात् विकृत होजाय और जो अकस्मात् स्वस्थ होजाय और अकस्मात्‌ इन्द्रियाँ उत्पात ग्रस्त हो जाँय तो यह सन्निपात का पूर्व लक्षण है ॥३३७॥

शिव द्वारा अरिष्ट चिह्न कथन

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत् ।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥३३८

जिसके शरीर में शीतलता और प्रकृति में विकृति हुई हो उसके अरिष्ट का वर्णन विस्तार सहित करता हूं ॥३३८॥

दुष्टशब्देषु रमतेऽशुद्धशब्देषु चाप्यति ।
पश्चात्ताप भवेदस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥३३९

जिसे दुष्ट शब्द उत्तम और उत्तम शब्द दूषित प्रतीत हो, वह पश्चात्ताप युक्त होकर मरण को प्राप्त होता है ॥३३९॥

हुंकारः शीतलो यस्य फून्कारो वह्निसन्निभः ।
महावैद्यो भवेत्तस्य तस्य मृत्युर्भवेद्ध्रुवम् ॥३४०

जिसका हुंकार शीतल और फूत्कार अग्नि के समान उष्ण हो, उसकी रक्षा महावैद्य भी करे तो अवश्य ही मृत्यु होती है ॥३४०॥

जिह्वां विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं सन्मातृकामंडल-
मेतान्येवरुन्धतीममृतगुं शुक्रं ध्रुवं वा क्षणम् ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः ।
सोऽवश्यं विशतीह काल वदनं संवत्सरादूर्ध्वतः ॥३४१

जिसे जिह्वा, विष्णुपद (आकाश), ध्रुव तारा, देवपद, मातृका मण्डल, अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र और अगस्त तारे में से एक भी दिखाई न दे तो उसका मरण अवश्य होना समझे।३४१।

अरश्मिबिम्ब सूर्यस्त वह्नेः शीतांशुमालिनः ।
दृष्ट् वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥३४२

जिसे चन्द्र-सूर्य की प्रभा दिखाई न दे और अग्नि में शीतलता प्रतीत हो तो ग्यारह मास में मरण हो जाता है ॥३४२॥

वाप्यां पुरीषमूत्राणि सुवर्ण रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दश मासान्न जीवति ॥३४३

जो मनुष्य स्वप्न अथवा जाग्रत् में किसी बावड़ी में मल-मूत्र स्वर्ण या रजत देखे, वह दश मास भी नहीं जीता ॥३४३॥

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कषान्वितम् ।
विरूपाणि च भूतानि नव मासान्न जीवति ॥३४४

जिसे दीपक, स्वर्ण और सभी भूत, कभी-कभी विपरीत वर्ण के दिखाई दें, वह नौ मास भी जीवित नहीं रहता ॥३४४॥

स्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालभ्यते
प्राप्तो वा कनकप्रभां यदि भवेत्क्रूरोऽपिकृष्णच्छविः।
शूरो भीरुसुधीरधर्मनिपुणः शान्तो विकारी पुमान् ,
नित्येवंप्रकृतिःप्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति॥३४५

जो स्थूल पुरुष सहसा कृश एवं कृश पुरुष सहसा स्थूल हो जाय अथवा क्रूर या कृष्ण वर्ण का हो वह सहसा स्वर्ण जैसी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रभा वाला होजाय, शूर हो वह कायर और धर्मी हो वह अधर्मी तथा शान्त हो वह चंचल होजाय, इस प्रकार जिस मनुष्य की प्रकृति ऐसी चलायमान जान पड़े वह आठ मास जीवित रहता है ।।३४५।।

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वा-
मूले तथा स्याद्रुधिरं च कृष्णम् ।
विद्धं न च ग्लायति यत्र दृष्ट्या
जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासम् ।।३४६

जिसकी हथेली में पीड़ा हो, जिह्वामूल का रक्त काला पड़ जाय और जिसके शरीर में चोटने से दर्द न हो, वह मनुष्य सात महीने जीवित रहता हैं ।।३४६।।

मध्यांगुलीनां त्रितयं न वक्रं
रोगं विनां शुष्यति यस्य कण्ठ ।
मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाड्या-
त्षड्भिः स मासैःप्रलयं प्रयाति ।।३४७

जिसके हाथ की तीन मध्यांगुली न मुड़ें, बिना रोग ही जिसका कण्ठ शुष्क हो जाय और बार-बार पूछने पर भी जो जड़तावश कुछ उत्तर न दे, वह छः महोने में मृत्यु को प्राप्त होगा ।।३४७।।

न यस्य स्तरणकिञ्चितद्विद्यते स्तनचर्मणि ।
सोऽयवश्यपञ्चमे मासि स्कन्धारूढो भविष्यति ।।३४

जिसके स्तन चर्म में शून्यता प्रतीत होने लगे वह पाँच महीने में स्कंधारूढ़ होता अर्थात् मर जाता है ।।३४८।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यस्य न स्फुरति ज्योति पीडचते नयनद्वयम् ।
मरण तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥३४९

जिसके नेत्रों में प्रकाश न हो और उनमें पीड़ा हो वह चतुर्थ मास में मर जायगा ॥३४९॥

दन्ताश्च वृषणौ यस्य न किञ्चिदपि पीडचते ।
तृतीयं मासमावश्यं कालज्ञायां भवेन्नरः ॥३५०

जिसके दाँत और वृषणों को दबाने से पीड़ा न हो वह तीन महीने मे कालाज्ञा अर्थात् मृत्यु का वशवर्ती हो जायगा ॥३५०॥

दूरस्थ काल-दर्शन

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदामि समासेन यथाऽऽदिष्टं शिवागमे ॥३५१

दूरस्थकाल जिस उपाय से देखा जा सकता है उसे शिव-शास्त्र के कथनानुसार बताता हूँ ॥३५१॥

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहितः ॥३५२

निर्जन्त, एकान्त वन में जाकर सूर्य को पीठ पर करके समाहित रूप से अपनी छाया को कण्ठ प्रदेश में देखे ॥३५३॥

ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रीं परब्रह्मणे नमः ।
अष्टोत्तरशत जप्त्वा ततः पश्यति शंकरम् ॥३५३

फिर आकाश की ओर देख कर ह्रीं परब्रह्मणे नमः' मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे तो शंकर के दर्शन होंगे ॥३५३॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचरणांपतिर्भवेत् ।
वर्षद्वयेन तेनाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ॥३५४

शुद्धि स्फटिक के समान रूप वाले एवं अनेक रूप रखने वाले शिवजी के उक्त जप-अभ्यास के छः मास करने से भूचरों का अधिपति होता है और यदि दो वर्ष अभ्यास कर ले तो कर्त्ता, हर्त्ता और स्वयं प्रभु होता है ॥३५४॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च ।
सतताभ्यासंयोगेन नास्ति किंचित्सुदुर्लभम् ॥३५५

निरन्तर अभ्यास करने से त्रिकाल का ज्ञान और परमानन्द प्राप्त होता तथा कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती ॥३५५॥

तद्रूतं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्निे निर्मले ।
षणमासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्रसंशयः ॥३५६

स्वच्छ आकाश में जिस योगी को शिवजी का कृष्ण वर्ण रूप प्रतीत हो वह छः मास में मर जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥३५६॥

वर्ण दर्शन के विभिन्न फल

पीते व्याधिर्मयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णोऽथ चेत्तस्मिन्सिद्धश्चगीयते महान् ॥३५७

पीत वर्ण दिखाई देने पर व्याधि-भय, नीला दिखाई देने पर हानि और नाना वर्ण दिखाई देने पर योगी को सिद्धि प्राप्त होती है ॥३५७॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम् ।।३५८

यदि छाया में पाँव, टखने, जठर और बाहु दिखाई न दें तो उस योगी की मृत्यु अवश्य हो जाती है ।।३५८।।

वामबाहुस्तथा भार्या नश्येतेति न संशयः ।
दक्षिणे बन्धुनाशो हि मृत्युं मासंविनिर्दिशेत् ।।३५९

यदि छाया में बाँयी भुजा दिखाई न दे तो भार्या का मरण और दाँयी भुजा दिखाई न दे तो बन्धुनाश और एक मास में मृत्यु होना बतावे ।।३५६।।

अशिरोमासरणं विनाजंघे दिनाष्टकम् ।
अष्टाभिः स्कन्धनाशेन च्छायालोपेन तत्क्षणात्।।३६०

शिर न दिखाई देने पर एक मास में मरण, जघा या कन्धे न दिखाई देने पर आठ दिन में और छाया का सर्वथा लोप होने पर तत्क्षण मृत्यु होती है ।।३६०।।

प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छायाऽङ्गुलिश्चाधरं
दृष्ट्वाऽर्द्धं न मृतिस्त्वनन्तरमनोच्छायां नरः पश्यति ।
तत्कर्णांसकरास्य पार्श्वहृदया भावेक्षणार्धात्स्वयम्
दिङ्मूढोहिनरःशिरोविगमतोमासांस्तुषड्जीवति।।३६१

प्रातःकाल सूर्य की ओर पीठ करके अपनी छाया को देखने पर यदि ओष्ठ या अगुली की छाया न दीखे तो एक निमेष में, यदि पूरी छाया ही न दीखे तो आधे निमेष में,कान, कन्धा,हाथ, मुख, पीठ और हृदय की छाया न दीखे तो आधे क्षण में और शिर न दीखे या दिशा का ज्ञान नष्ट होजाय तो छः मास में मर जाता है ।।३६१।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्यु शेषाहेन च मासिके ॥३६२

जिस मनुष्य का सूर्य स्वर निरन्तर सोलह दिन चलता है तो एक मास में मरण होता है ॥३६२॥

संपूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्यु कालज्ञानेन भाषितम् ॥३६३

जिसका सूर्य स्वर निरन्तर बहे और चन्द्रस्वर कभी न दिखाई दे तो एक पक्ष में मृत्यु होती है, यह कालज्ञानियों का कहना है ॥३६३॥

मूत्रं पुरुषं वायुश्च समकालं प्रवर्तते ।
तदाऽसौ चलितो ज्ञयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ॥३६४

जिसका मल, मूत्र और वायु एक ही साथ निर्गत होता हो उसका प्राणवायु चंचल होने से दश दिन में मरण होता है, यह सत्य है ॥३६४॥

सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञेननानुभाषितम् ॥३६५

जिस पुरुष का चन्द्रस्वर सम्पूर्ण बहे और सूर्य स्वर दिखाई न दे, वह एक मास में मृत्यु को प्राप्त होता है, यह काल ज्ञानियों का कथन है ॥३६५॥

आयुहीनता का लक्षण

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥३६६

अरुन्धती, ध्रुव और विष्णु के तीन पद तथा चतुर्थं मातृ-मण्डल, जिन्हें यह दिखाई न दें, वे आयुहीन होते हैं ॥३६६॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अरुन्धतीं भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
ध्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमण्डम् ॥३६७

जिह्वा को अरुन्धती, नासाग्र को ध्रव, भृकटियों को विष्णु-पद और ताराओं को मातृमण्डल कहते हैं ॥३६७॥

नव ध्रुवं सप्त घोषं पञ्च तारां त्रिनासिकाम् ।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ॥३६८

भृकुटी दिखाई न देने पर नौ दिन में; कानों द्वारा शब्द न सुनने पर सात दिन में, तारा न दिखाई दे तो तीन दिन में, जिह्वा न दीखे तो मनुष्य एक दिन में अवश्य मरता है ॥३६८॥

कोणावक्ष्णोरंगुलिभ्यांकिञ्चित्पीडच निरीक्षयेत् ।
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहेन भवेत्मृतः ॥३६९

नेत्र-कोणों को अँगुलियों से दबाने पर यदि तेज का बिन्दु दिखाई न दे तो दश दिन में मरण होता है ॥३६९॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवञ्जना ॥३७०

तीर्थ में स्नान, दान, तपस्या, सुकृत, जप, ध्यान और योग से काल की वंचना हो सकती है ॥३७०॥

शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलास्तथा ।
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्धनः ॥३७१

धातु और मल के दोष देह का नाश कर देते हैं और वायु की समानता बल और तेज की वृद्धि करती है ॥३७१॥

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ।
योगाभ्यासात्समायान्ति साधु याप्यास्तु साध्यताम् ।
असाध्याजीवितंघ्नन्तिनतत्रास्तिप्रतिक्रिया ॥३७२

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धर्मादि साधनों के द्वारा उस देह की रक्षा करे योगाभ्यास जय रूप होता तथा असाध्य भी साध्य होजाता है। यदि योगाभ्यास न हो तो कष्ट साध्य या मरण होता है, उसका अन्य प्रतीकार नहीं है ।।३७२।।

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं
तेजस्तमोनिव हनाशकरं रहस्यम् ।
तेषामखण्डशशिरम्सुकांतिभाजां
स्वप्नोऽपि नो भवति कालभयं नराणाम् ।।३७३

जिसके हृदय में नित्य, अद्वितीय एवं तमनाशक तेज (स्वर) का ज्ञान होता है, उस चन्द्रमा के समान प्रकाशमान पुरुष को स्वप्न में मरणभय नहीं होता ।।३७३।।

इडादि की त्रिवेणी

इडा गंगेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वतीं विद्यात्प्रयागादिसमस्तथा ।।३७४

इड़ा नाड़ी को गंगा और पिंगला को यमुना जाने तथा मध्य नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना को सरस्वती समझे। इन तीनों नाड़ियों का संगम ही प्रयोग है ।।३७४।।

आदौ साधनमांख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
बद्धपद्मासनो योगी बन्धयेदुड्डियानकम् ।।३७५

प्रारम्भिक साधन ही शीघ्र प्रत्ययकारक कहा गया है। इससे योगी बद्ध पद्मासन लगाकर उड्डियान बन्ध नामक मुद्रा को करे ।।३७५।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्राणायाम ज्ञान की आवश्यकता

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेयहे ॥३७६

पूरक, कुम्भक और तीसरा रेचक यह तीन प्रकार के प्राणायाम शरीर की शुद्धि में कारण होते हैं। योगी पुरुष इन्हें नित्य-प्रति करे ॥३७६॥

पूरकः कुरुते वृष्टिं धातुसाम्यं तथैव च ।
कुम्भके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ॥३७७

पूरक प्राणायाम शरीर को अमृतवृष्टि द्वारा सींचता और धातुओं को सम करता है। कुम्भक बाह्याभ्यन्तर की वायु का और धातुओं का संयमन करता है ॥३७७॥

रेचको हरते पापं कुर्याद्योगपदं व्रजेत् ।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ॥३७८

रेचक प्राणायाम पापों का हरण करता है और योगपद को प्राप्त कराता है। फिर जो योगी समान रूप से स्थित रहता है, वह लयबन्ध करता है ॥३७८॥

कुम्भयेत्सहजं वायुं यथा शक्ति प्रकल्पयेत् ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येणापूरयेत्सुधीः ॥३७९

कुम्भक द्वारा यथाशक्ति स्वाभाविक वायु का निरोध करे और चन्द्रमार्ग (इडा) से रेचक तथा सूर्य नाड़ी (पिंगला) से पूरक करे ॥३७९॥

दीर्घजीवन का रहस्य कथन

चन्द्र पिबति सूर्यश्च सूर्यं पिबति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥३८०

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कालावधि से रहित होकर जो योगी चन्द्र स्वर को सूर्यस्वर से और सूर्य स्वर को चन्द्रस्वर से पान करता है, वह चन्द्रमा और तारागण आदि के स्थित रहने पर्यन्त जीवित रहता है ॥३८०॥

स्वीयाङ्ग वहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु ।
मुखबन्धममुञ्चन्वै पवनं जायते युवा ॥३८१

जो योगी अंग में प्रवाहित नाड़ी को रोककर, मुख से भी प्राणवायु को रोकता है, वह युवावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥३८१॥

षण्मुखीकरण वर्णन

मुखमासाक्षिकर्णान्तानंगुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्त्वोदयमितिज्ञेयं षण्मुखीकरणंप्रियम् ॥३८२

मुख, नासा, नेत्रों और कानों को अँगुलियों के द्वारा रोके यह तत्वज्ञान कराने वाला प्रिय षण्मुखीकरण नामक कर्म है ॥३८२॥

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डल लक्षण त्विदम् ।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवत् ॥३८३

तत्वों के रूप, गति, स्वाद मण्डल आदि लक्षणों का ज्ञान षण्मुखीकरण के द्वारा होता है और स्वरों के मार्ग का ज्ञाता ही इसे प्राप्त कर सकता है ॥३८३॥

निराशो निष्कलो योगो न किंचिदपि चिन्तयेत् ।
वासनामुन्मनां कृत्वा कालं जयति लीलया ॥३८४

सब आशाओं से मुक्त, सभी कार्यों से विमुख हुआ योगी कभी किसी वस्तु की चिन्ता न करे, क्योंकि जो सब प्रकार की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वासनाओं से मुक्त होजाता है, वह काल को भी लीलापूर्वक जीत लेता है ।।३८४।।

विश्वस्य वेदिका शक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य याममात्रं भवेदिह ।।३८५

सम्पूर्ण विश्व को जानने की शक्ति नेत्रों द्वारा उसी को दिखाई देती है, जिसका मन एक प्रहर भी उसमें स्थिर रहता है ।।३८५।।

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तन्त्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे ।।३८६

उस योगी की आयु नित्यप्रति तीन-तीन घड़ी के प्रमाण से बढ़ती जाती है, यह प्राचीन तन्त्र विद्या गुणवान् सिद्धों के प्रति शिवजी द्वारा कही गई है ।।३८६।।

स्वरज्ञानी को शिव सायुज्य-प्राप्ति

बद्ध्वा पद्मासनं यो गुदगतपवनं सन्निरुद्ध्यामुच्चैस्तं
तस्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्ध्य ।
एकीभूतं सुषुम्ना विवरमुपगतं ब्रह्मरन्ध्रे च नीत्वा
निक्षिप्याकाशमार्गे शिवचरणरतायान्ति ते केऽपिधन्याः।।

पद्मासन बांध कर गुदागत अपान वायु को रोके और उसे ऊपर की ओर ले जाकर रन्ध्र में स्थित कर प्राण के साथ योजित करे तो वह सुषुम्ना के मुख के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आकाश में स्थित हुए प्राणापान के द्वारा शिवजी के चरणों में आसक्त जो योगी जाते हैं, वे धन्य हैं ।३८७।

एतज्जानाति योगी य एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलम् ।।३८८

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसे जानने वाला जो योगी नित्यप्रति इसे पढ़ लेता है, वह सभी दुःखों से मुक्त होकर इच्छित फल को प्राप्त कर लेता है ।।३८८।।

स्वरज्ञान नरे यत्र लक्ष्मीः पदतले भवेत् ।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ।।३८९

जिसे स्वर का ज्ञान है, लक्ष्मी उसके चरणों में सुख रहती है तथा वह जहाँ कहीं भी जाता है,वहीं उसे सदैव सुख की प्राप्ति होती है ।।३८९।।

स्वरज्ञानी की पूजनीयता कथन

प्रणवः सर्ववेदानां ब्राह्मणे भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ।।३९०

जैसे सभी वेदों में ओंकार श्रेष्ठ है, पूजनीयों में ब्राह्मण और सूर्य श्रेष्ठ हैं, वैसे ही मृत्युलोक में स्वरज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ और पूज्य है ।।३९०।।

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनम् ।।३९१

जैसे उक्त तीनों नाड़ियों का ज्ञान है तथा जो तत्वज्ञान से युक्त है, उसके समान तो लाख करोड़ रसायन भी नहीं हैं ।३९१।

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचकम् ।
पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत् ।।३९२

नाड़ी भेद का विवेचक विद्वान् यदि एक अक्षर भी प्रदान कर दे तो पृथिवी में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, जिसे देकर वह (अक्षर ज्ञान लेने वाला) ऋणमुक्त हो सके ।।३९२।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यं स्त्रियस्तथा ।
गर्भाधानं च रोगश्च कलार्द्धेनैवमुच्यते ।।३९३

इस शास्त्र में स्वर तत्व, युद्ध; स्त्रियों का वशीकरण, गर्भाधान और रोगों का जो वर्णन है, वह आधी कला से ही किया गया है ।।१९३।।

एवं प्रवर्तितं लोके प्रसिद्धं सिद्धियोगिभिः ।
चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतां सिद्धिदायकम् ।।३९४

इस प्रकार यह स्वरोदय ज्ञान सिद्ध योगियों ने लोक में प्रसिद्ध किया है । यह सूर्यग्रहण में जपने या पढ़ने से सिद्धि का देने वाला होता है ।।३९४।।

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम् ।
चिंतयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ।।३९५

जो अपने स्थान में भले प्रकार आसीन रहता हुआ अल्प निद्रा और अल्प आहार से जीवन यापन एवं परमात्म-चिन्तन करता है वह स्वरज्ञानी होजाता है ।।३९५।।

❀ वृहद् शिवस्वरोदय का पूर्वार्द्ध समाप्त ❀

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बृहत् शिवस्वरोदय

उत्तरार्द्ध

स्वरयोग की मान्यताएँ

मनुष्य जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रचलित मान्यताएँ हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध स्वर योग से है। यात्रा पर प्रस्थान करते समय जिधर की ओर का स्वर चलता हो उसी ओर के पाँव को पहले आगे बढ़ाकर चलें तो यात्रा में सफलता प्राप्त होती है। उस समय यदि दाहिना स्वर चलता हो तो एक, तीन पांच सात आदि विषम पद रखते हुए यात्रा आरम्भ करनी चाहिए और यदि बाँया स्वर चले तो दो, चार, छः, आठ आदि सम पद रखते हुए चलना हितकर रहता है। एक यह भी मान्यता है कि दांये स्वर में पाँच बार और बाँये स्वर में चार बार पाँव पटक कर चलने से निश्चय ही कार्य-सिद्धि होती है।

स्वर-संचार के विभिन्न फल

प्रातःकाल जागने पर जिधर का स्वर चलता हो, उधर के हाथ की हथेली से मुख का स्पर्श करके शय्या से उठते समय पृथिवी पर उसी ओर का पाँव रखकर चलने से वह पूरा दिन मंगलमय होता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया के दिन चन्द्र-दर्शन के समय यदि बाँया स्वर चलता हो तो वह उस मनुष्य के लिए अत्यन्त कल्याणकारी होता है। इसके विपरीत दाँया स्वर चलता हो तो उसे अहितकर समझ कर बाँया स्वर चलाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि शुक्ल पक्ष को प्रतिपदा में बाँया स्वर चलता हो तो शीत-विकार की और दाँया स्वर चलता हो तो उष्णता से उत्पन्न होने वाले रोगों की सम्भावना रहती है। बाँये स्वर का चलना रविवार के प्रातःकाल अशुभ और चन्द्रवार के प्रातः काल शुभ समझा जाता है। यह भी अनुभूत है कि कृष्णपक्ष के चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्रवार में दाँया स्वर चलना अहितकर होता है, परन्तु शुक्लपक्ष के मंगल, शनि और रविवारों में दाँया स्वर चलना श्रेयस्कर है। इससे भिन्न वारों का फल भी भिन्न अर्थात् विपरीत समझना चाहिए। यदि किसी का बाँया स्वर सूर्योदय काल में और दाँया स्वर सूर्यास्त काल में चलता हो तो वह अवश्य ही शुभ दिन का संकेत है।

यदि किसी कार्यवश किसी क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति के समक्ष जाना आवश्यक हो तो उस समय न चलने वाले स्वर की ओर का पाँव आगे रखकर चले और उसी ओर जाकर बैठे तो कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त होती है और वार्तालाप-काल में उस व्यक्ति का व्यवहार अपेक्षाकृत नम्र होजाता है। परन्तु ध्यना रखना चाहिए कि चलते हुए स्वर की ओर का पाँव आगे बढ़ाना अंग सचालन करना अथवा चलित स्वर की ओर जाकर बैठना या खडा होना हानिप्रद सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य अनेकों मान्यताओं का वर्णन पूर्वार्द्ध में हो चुका है। उन सभी का आधार कुछ सुना-सुनाया, कपोल-कल्पित नहीं, वरन् वैज्ञानिक है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सूर्य का कार्य जलकणों को आकर्षित करना और चन्द्रमा का कार्य समुद्र की तरंगों को प्रभावित करना है। इसी के फल स्वरूप समुद्र में ज्वार भाटा आ जाता है। इस प्रकार सूर्य-चन्द्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के पारस्परिक सहयोग से धरती से उठता हुआ समुद्र का जल आकाश में पहुँच कर एकत्र होता है और वही मेघ के रूप में धरती को सींच कर शरीरधारियों के जीवन को स्थिर बनाने में सहायक होता है। यदि सूर्य-चन्द्र अपने इस काय को छोड़ दें तो उससे अनेक उत्पातों का सामना करना पड़ सकता है। जो कि सूखा, दावाग्नि, बाढ़ आदि किसी भी रूप में प्रकट हो सकते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा के गुणों की भिन्नता

सूर्य और चन्द्रमा के गुणों में नितान्त विपरीतता है, अर्थात् एक में गर्मी और दूसरे में ठंडक है, यह दोनों ही गुण देहधारियों के जीवन में अत्यन्त आवश्यक हैं। सम्पूर्ण विश्व इन दोनों गुणों के प्रभाव में रहता है। क्योंकि इनका अपने सहज रूप से न्यूनाधिक हो जाना संसार की विपत्ति का कारण बन जाता है।

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि सृष्टि की रचना में सूर्य-चन्द्र का भारी महत्व है। देहधारियों में भी इनकी स्थिति शरीरस्थ नाड़ियों में मानी गई है। नाभि से कण्ठ पर्यन्त जो बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, उनमें बीस नाड़ियाँ प्रधान समझी जाती हैं। यह नाड़ियाँ शरीर के ऊर्ध्व भाग में दश और दश ही अधोभाग में गई हैं। इनमें भी इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि दश नाड़ियाँ ही प्रमुख हैं। उनकी स्थिति इस प्रकार है—

इस शरीर के बांये भाग में, पिंगला दाँये भाग में और सुषम्ना मध्य भाग में रहती हैं। हस्तिजिह्वा दांये नेत्र में, गान्धारी बाँये नेत्र में, पूषा दाँये कान में, यशस्विनी बाँये कान में, अलम्बुषा मुख में, कुहू उपस्थ में और शंखिनी गुह्य प्रदेश में होती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन दश नाड़ियों में अत्यन्त प्रधान नाड़ियाँ तीन ही हैं—इडा, पिंगला और सुषुम्ना। इनमें इडा नाडी चन्द्रमा से सम्बन्धित होने के कारण चन्द्र नाड़ी और पिंगला सूर्य से सम्बन्धित होने से सूर्यनाड़ी भी कही जाती है। सुषम्ना में भगवान् शिव का निवास है, इसलिए इसे शिव नाड़ी भी कहते हैं। यही तीन नाड़ियाँ स्वर ज्ञान में कारण होती हैं।

नाड़ियों से स्वास्थ्य की परीक्षा

शारीरिक स्वास्थ्य में नाड़ियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा स्वास्थ्य का ठीक ज्ञान हो सकता है, इसमें अनुमान से नहीं, वरन् वैज्ञानिक रूप से प्रत्यक्ष परीक्षा निहित होती है। स्वर योग के विद्वानों का कहना है कि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय-काल में दाँया स्वर चलता हो तो शरीर का पूर्ण स्वस्थ होना स्पष्ट है, जबकि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में सूर्योदय के समय दाँये स्वर का चलना अस्वस्थता का सूचक है।

वैद्यक शास्त्रों में भी रोग-परीक्षा नाड़ी देख कर ही की जाती है। परन्तु उसमें वात, पित्त, कफ के रूप में नाड़ियों का विभाजन तीन दोष-भेदों से किया गया है, जिनका उल्लेख यहाँ अभीष्ट नहीं, है।

ब्रह्माण्ड और पिण्ड की समानता

ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है उस सब की विद्यमानता पिण्ड में भी रहती है। इसीलिए ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य-चन्द्र पिण्ड में भी रहते हैं। वाम नाड़ी इडा में चन्द्रमा की शक्ति और दक्षिण नाड़ी पिंगला में सूर्य की शक्ति है, परन्तु उस शक्ति को अनुकूल बना लेने से सभी कुछ संभव होजाता है और उसे अनुकूल बनाने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। बस अभ्यास से शक्ति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को अनुकूल बना लेने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल हो सकती हैं। इसी को स्वरयोग कहते हैं।

स्वर को अनुकूल बनाने का नियम

प्रतिकूल स्वर अहितकर और इच्छाओं के विपरीत होता है। यदि उसे बदल लिया जाय तो उससे लाभ उठाया जा सकता है। स्वर बदलने की वहुत-सी विधियाँ हैं, परन्तु, हम उनमें से इस सरल विधि का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। चलता हुआ स्वर अनुकूल न हो तो जिस ओर का स्वर चल रहा हो, उसी करवट से लेट जाना चाहिए। इससे कुछ देर में ही स्वर बदल कर दूसरा स्वर चलने लगता है। इसे और भी स्पष्ट समझिये कि यदि दाँया स्वर चल रहा है और बाँया स्वर चलाना है तो दाँयी ओर करवट करके लेटने से कुछ देर में ही बाँया स्वर चलने लगेगा। इसी प्रकार बाँयी करवट लेटने से बाँया स्वर रुक कर दाँया चलने लगेगा।

स्वर योग का प्रारम्भिक अभ्यास

स्वर योग के अभ्यास में स्वरों का ज्ञान आवश्यक होता है और वह ज्ञान स्वरों की पहिचान पर निर्भर होती है। सर्व प्रथम हथेली के द्वारा स्वर के चलने की जानकारी की जाती है। उसमें यह देखा जाता है कि किधर का स्वर चल रहा है—बाँया अथवा दाँया? या दोनों स्वर समान रूप से चल रहे हैं? यह ज्ञान नासिका छिद्रों के आगे हथेली करने से होता है और इसकी दृढ़ता कुछ दिनों में ही हो जाती है।

अभ्यास का क्रम एवं काल

जब स्वर के प्रवाह की ठीक से जानकारी होजाय, तब यह जानना चाहिए कि दिन में किसी समय, कितनी देर के लिए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कौन-सा स्वर चलता है ? जब इसका भी अभ्यास होजाय तब रात्रि के समय भी ऐसा ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार का ज्ञान कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष दोनों में ही प्रारम्भ के छः दिन अर्थात् प्रतिपदा से छठ पर्यन्त प्राप्त करना चाहिए।

दोनों पक्षों के अन्तिम छः दिनों तक भी इसकी जानकारी की जा सकती है। इसके पश्चात् पक्षों के बीच के तीन-तीन दिन भी स्वरों के चलने का ज्ञान प्राप्त करे। इस प्रकार का यह अभ्यास कम से कम तीन मास और अधिक स अधिक एक वर्ष पर्यन्त किया जा सकता है। इतना होने के अन्तर ऊपर लिखे गए अभ्यास क्रमों को परस्पर मिलाकर यह देखना चाहिए कि किन-किन दिनों, पक्षों या मासों में समानता रहती है। सुविधा तो इसमें रहती है कि अभ्यासी सावधान चित्त से इस अभ्यास को दृढ़ करे और जो कुछ भी अनुभव करे उसे लिख ले। इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि तो होती है, यथार्थ अयथार्थ के जानने-समझने में भी बहुत सहायता मिल जाती है।

पंचमहाभूत या पंचतत्व

पंचभूत सृष्टि के आदि कारण हैं, उनका महत्व स्वरों के ज्ञान में भी किसी प्रकार कम नहीं हैं। इन तत्वों का ब्रह्माण्ड से बहुत निकट का सम्बन्ध है क्योंकि उन भूतों या तत्वों से ही ब्रह्माण्ड का निर्माण होता है। इन तत्वों को ठीक प्रकार से समझना स्वरयोग के अभ्यासियों के लिए अत्यन्त आवश्यक विषय है। इस प्रकार उक्त तत्वों का ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित होना सिद्ध है और यह भी सिद्ध है कि स्वर का इन तत्वों से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध बन जाता है।

इसीलिए पंचतत्वों या पंच महाभूतों की उत्पत्ति के विषय में जान लेने की उत्सुकता होना स्वाभाविक है। ब्रह्म से आकाश

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उत्पन्न हुआ, उस आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई। वायु से तेज अर्थात् अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्व हुआ। सुबालोपनिषत् में सृष्टि क्रम पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

तदाहुः किं तदासीत् ? तस्मै स होवाच न सन्नासन्न सदसदिति। तस्मात्तमः संजायते, तमसो भूतादिर्भूतादेरा-काशद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी।

अर्थात्—सृष्टि से पहले क्या था ? इस प्रश्न के उत्तर में घोरांगिरस ऋषि ने कहा—सृष्टि से पूर्व सत् और असत् नहीं था। इससे तमस् (अज्ञान) उत्पन्न होता है। इस तमस् से भूतादि अहंकार की उत्पत्ति हुई। अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी हुई।

इस प्रकार उक्त तत्वों से ही सृष्टि से सब पदार्थ उत्पन्न हुए, जिनमें मनुष्य शरीर भी सम्मिलित है। इन तत्वों का बोध स्वर से ही होता है और उस स्वर ज्ञान की उपलब्धि के लिए प्रारंभ में हथेली के द्वारा स्वर की परीक्षा का अभ्यास आवश्यक होता है। इस अभ्यास के परिपक्व होने पर ही स्वर के गोपनीय रहस्यों का ज्ञान हो सकता है।

स्वर परीक्षा से तत्वज्ञान की प्राप्ति

परीक्षा के द्वारा स्वरप्रवाह का ज्ञान होने के समान ही तत्वों का ज्ञान भी स्वर-परीक्षा के द्वारा किया जाता है। विभिन्न तत्वों के मिश्रण से स्वर प्रवाह की गतियों में भी विभिन्नता होती है। जिज्ञासुओं को इन गतियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्वों की विभिन्नता वाले स्वरों का परिणाम

आकाश तत्व के योग से सुषुम्ना नाड़ी में स्वर का प्रवाह रहता है, जिससे बाँये और दाँये दोनों स्वर चलते हैं। इससे शरीर में चिन्ता थकान, उद्विग्नता आदि का आभास होता है। मन में एक तनाव पूर्ण ऊब बनी रहती है।

वायु तत्व के कारण स्वर का प्रवाह सीधा चलता है। इससे बांये या दाँये में से कोई भी एक स्वर चल सकता है। यह तत्व शरीर में आलस्य का अनुभव कराता है, जिससे जँभाईयाँ आने लगती हैं।

अग्नि तत्व में वाम स्वर हो या दक्षिण, उसका प्रवाह ऊपर की ओर रहता है। इसके कारण मनुष्य का चित्त तीक्ष्ण वस्तु की ओर आकर्षित रहता है। उसकी इच्छा चटपटे पदार्थों के सेवन में अधिक होती है।

जल तत्व के कारण चन्द्र स्वर या सूर्य स्वर में से कोई भी एक स्वर चलता है, परन्तु उसका प्रवाह नीचे की ओर होता है। इसमें प्यास की अधिकता और चित्त में कुछ व्याकुलता रह सकती है।

पृथिवी तत्व से बाँये-दांये में से कोई एक स्वर चलता है, परन्तु उसका प्रवाह बिल्कुल सीधा होता है। इससे मनुष्य के शरीर में भारीपन और शरीर टूटने जैसा किंचित् आभास होता है, परन्तु मानसिक शान्ति बनी रहती है।

मिश्रित तत्वों को अनुभूति

तत्वों के जानने की एक अनुभूत विधि यहाँ लिखी जाती है—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक स्वच्छ दर्पण लें और उस पर मुख से श्वास छोड़ें या फूंक मार दें तो दर्पण कुछ आकृतियाँ बन जाती हैं। आकाश तत्व के कारण दर्पण पर कुछ बिन्दु जैसी बन जाती है। यदि वर्तुलाकार आकृति बने तो उसका अर्थ होगा वायु तत्व की प्रमुखता और तेज तत्व के कारण त्रिकोण आकृति बनती है। मुख की वाष्प में जल तत्व के मिश्रण से अर्द्धचन्द्राकार और पृथिवी तत्व से चौकोर आकृति बन जाती है।

यह ज्ञातव्य है कि आकाश तत्व का प्रवाह दोनों स्वरों में होता है, उसकी प्रगति ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् अथवा सीधी, कैसी भी हो सकती है। जबकि वायु, तेज, जल और पृथिवी तत्व का प्रवाह वाम या दक्षिण, किसी एक ही स्वर में होता है। इनमें से वायु की गति तिर्यक्, तेज की ऊर्ध्व, जल की अधः और पृथिवी की सीधी होती है।

तत्वों के वर्ण आदि का वर्णन

विद्वानों ने तत्वों के रंग, स्वाद, प्रयोग और फल पर जो अनुभव व्यक्त किये हैं, उनका निचोड़ यह है कि आकाश तत्व में अनेक रंगों का मिश्रण होता है, इससे मुख का स्वाद कड़ुआ होता है। यह फलहीन होने के कारण निषिद्ध समझा जाता है। इसका स्थान मस्तक है।

वायु तत्व का वर्ण मेघ के समान नीला, स्वाद खट्टा, स्थान नाभिमूल और प्रवाह का परिमाण आठ अंगुल होता है। यह क्षयकारी होने के कारण मारण उच्चाटन कर्म में उपयुक्त समझा गया है।

तेज तत्व का वर्ण लाल, स्वाद तीक्ष्ण और स्थान दोनों कन्धों में है। यह क्रूर कर्म में प्रयुक्त होने वाला मृत्युकारी तत्व है। इसका प्रवाह चार अँगुल माना जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जल का रंग दूध जैसा श्वेत, स्वाद कषैला, परिमाण सोलह अंगुल होता है। इसका स्थान दोनों चरणों में है। चर कर्म अर्थात् शीघ्रता वाले कर्मों में प्रयोग करने से यह सिद्धिदायक सिद्ध होता है।

पृथिवी तत्व का वर्ण स्वर्ण के समान पीला होता है, इसका स्थान दोनों जाँघों में है। स्वाद मीठा और परिमाण बारह अंगुल है। इसकी उपयोगिता स्थिर कर्मों में होती है इस तत्व को सिद्धिदाता माना गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि आकाश तत्व फलहीन होता है, इसलिए इसके प्रवाह के समय किसी कार्य की योजना न बनावे और न किसी योजना को कार्य रूप में ही परिणत करे। वैसे यह तत्व सभी तत्वों के गुणों से सम्पन्न होने के कारण योगियों के लिए योगसिद्धि का दाता माना गया है,परन्तु भोगियों के लिए अहितकर होती है। इससे मरण और अग्नि में जलना भी संभव है। इसका स्थान मध्य में होता है।

वायु तत्व का प्रवाह हानिकारक है, क्योंकि यह क्षयकारी समझा गया है। वैसे इसका स्वर कुछ उष्ण, कुछ शीतल होता है और शीघ्रता वाले कर्मों में कभी-कभी सहायक भी बन जाता है। इसका स्थान उत्तर दिशा में है।

अग्नि तत्व भी हानिकारक है, यह दुष्ट कर्मों में फलप्रद सिद्ध होता है। इसमें उष्णता अधिक होती है। इसका स्थान दक्षिण में माना गया है।

जल तत्व अनेक कार्यों में सद्यः लाभप्रद होता है, यह तत्व स्वर को शीघ्रता से चलाता है। इसका स्थान धरातल में माना जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पृथिवी तत्व में विलम्ब से लाभ होता है, यह भारी शब्द से युक्त प्रवाह वाला है। इस तत्व सब प्रकार के भोगों का देने वाला समझना चाहिए। इसका स्थान पूर्व से पश्चिम पर्यन्त है।

उक्त पाँच तत्व ही पंच महाभूत माने जाते हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर की स्थिति है। इनमें से कोई एक भी न रहे तो शरीर ही नहीं रह सकता। पंचीकरण की विधि के अनुसार प्रत्येक तत्व में पाँच-पाँच गुण होते हैं। शरीर में आकाश तत्व दश प्रतिशत, वायु तत्व बीस प्रतिशत तेज तत्व तीस प्रतिशत, जल तत्व चालीस प्रतिशत और पृथिवी तत्व पचास प्रतिशत होता है।

तत्वों का पृथक्-पृथक् प्रभाव

शरीर पर किस तत्व का क्या प्रभाव पड़ता है? यह उत्कंठा भी स्वाभाविक रूप से हो सकती है। इसलिए इस पर भी कुछ प्रकाश डाला जाता है—

बैर, प्रीति, मोह-ममता, लज्जा, भय, आशंका आदि का भाव आकाश तत्व के कारण होता है। यदि इनमें से किसी के साथ चलना, बढ़ता, भोगना, बैठना, सिकुड़ना विस्तृत होना एवं किंकित् शीतलता, उष्णता आदि का आभास हो तो आकाश तत्व के साथ वायु तत्व का मिश्रण समझना चाहिए, क्योंकि यह सब गुण वायु तत्व के ही हैं।

अग्नि तत्व के कारण क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा, तेजस्विता आदि का होना स्वाभाविक होता है। यह तत्व खाये-पिये अन्नजल का परिपाक करने में समर्थ है। रक्त, मूत्र, शुक्र, लाला, मज्जा आदि जल तत्व से होते हैं। यदि उपर्युक्त लक्षणों में मिश्रण प्रतीत हो तो मिश्रित तत्वों का होना ही स्पष्ट है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शरीर के अस्थि, चर्म, माँस, रोम और नाड़ियाँ पृथिवी तत्व से निर्मित हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है कि मिश्रित तत्वों में विशिष्ट तत्वों का मिश्रण ही होता हो, कोई भी तत्व किसी भी अन्य तत्व से मिलकर अपने गुण को प्रकट कर सकता है।

ग्रहों का नाड़ियों से सम्बन्ध

आकाश तत्व में बृहस्पति, वायु तत्व में राहु और शनि, अग्नि तत्व में रवि और मंगल, जल तत्व में चन्द्रमा और पृथिवी तत्व में बुध का स्थान होता है। परन्तु तत्वों का मिश्रण होने से ग्रहों का स्थान बदल जाता है और यदि उनके गुण में कुछ अशुभ है तो वह शुभ होजाता है।

यदि चन्द्रस्वर में जल तत्व का मिश्रण हो तो चन्द्रमा का स्थान होता है और इसका फल शुभ ही होता है। यदि चन्द्र-स्वर में पृथिवी तत्व मिला हो तो वह बृहस्पति का और तेज तत्व मिला हो तो शुक्र का स्थान होगा। इस प्रकार चन्द्र स्वर में जल, पृथिवी, अग्नि आदि का होना निश्चय ही शुभ फलकारी सिद्ध होता है।

सब प्रकार के लाभार्थ किये जाने वाले कर्म, धनोपार्जन के लिए वणिक् वृत्ति, अन्न-धन के संचय का कार्य, युद्ध में विजय अथवा कहीं अन्यत्र आवागमन आदि में पृथिवी तत्व को शुभ-कारी माना जाता है। यदि सूर्य स्वर के प्रवाह में पृथिवी तत्व का समावेश हो तो वह सूर्य का स्थान होगा। यदि सूर्यस्वर प्रवाह में अग्नि तत्व का मिश्रण हो तो मंगल का स्थान माना जायगा। या वायु का तत्व मिला हो तो राहु का स्थान होगा।

इसी प्रकार नक्षत्रों का स्थान भी होता है। जिस तत्व का जो नक्षत्र हो, उसमें किसी तत्व विशेष के लिए नहीं, वरन्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सभी तत्वों के विषय में है। इसके विपरीत तत्व से भिन्न नक्षत्र के होने पर सिद्धि अवश्यंभावी होती है। परन्तु इसके लिए यह जानना आवश्यक होता है कि किस तत्व का कौन-सा नक्षत्र है? इस पर प्रकाश डाला जाता है—

वायु तत्व के नक्षत्र हैं—हस्त, चित्रा, मृगशिरा, विशाखा, पुनर्वसु, अश्विनी और उत्तराफाल्गुनी तथा तेज तत्व के भरणी कृत्तिका, मघा, पुष्य, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र माने गए हैं। जल तत्व के पूर्वाषाढा, उत्तरा भाद्रपद, आर्द्रा, मूल, अश्लेषा, शतभिषा और रेवती तथा पृथिवी तत्व के नक्षत्र रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, अनिष्ठा, उत्तराषाढा और श्रवण हैं। अनेक विद्वानों के मत में आकाश तत्व का कोई विशेष नक्षत्र नहीं होता, वरन् सभी नक्षत्रों पर उसका समान प्रभुत्व है।

तत्वों के बीजमन्त्र और आकार

पाँचों तत्वों के अपने-अपने पृथक् पृथक् बीज मन्त्र हैं। शास्त्रों के अनुसार आकाश का बीज मन्त्र 'हं' वायु का 'यं' अग्नि का 'रं' जल का 'वं' और पृथिवी का 'लं' स्वर के साधक को इन मंत्रों के जप के साथ वर्ण और आकार का ध्यान करना होता है। योगतत्वोपनिषत् में इनका जो आकारादि बताया गया है, वह इस प्रकार है—

पृथिवी तत्व

पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवी स्थानमुच्यते।
पृथिवी चतुरश्रं च पीतवर्णं लवर्णकम्॥
पार्थिवे वायुमारोप्य लकारेण समन्वितम्।
ध्यायंश्चतुर्भुजाकारं चतुर्वक्त्रं हिरण्मयम्॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थात्—पृथिवी चतुष्कोण और पीतवर्णवाली तथा 'ल' अक्षर से युक्त है। पृथिवी तत्व में वायु का आरोप करने और 'ल' को उसमें युक्त करके स्वर्ण के समान वर्ण वाले चतुर्भुज एवं चार मुख वाले ब्रह्मा का पाँच घड़ी तक ध्यान करने से पृथिवी तत्व जय होता है।

जल तत्व

आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम्।
अपोऽर्धचन्द्रं शुक्लं वं बीजं परिकीर्तितम्॥
वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम्।
स्मरन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
शुद्ध स्फटिक संकाशं पीतवास समच्युतम्।
धारयेत्पंचघटिकाः सर्वं पापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात्—जानु से गुदस्थान तक जलतत्व का स्थान कहा है। यह अर्द्धचन्द्र के रूप में 'व' बीज से युक्त है। इस जल तत्व में वायु का आरोप करके 'व' को समन्वित करे और चतुर्भुज, किरीटधारी, शुद्ध स्फटिक के समान, पीत वस्त्र धारण किये हुए भगवान् नारायण का पाँच घड़ी ध्यान करे, इससे सभी पापों से मुक्त होता है।

अग्नि तत्व

आपायोर्हृदयान्तं च वह्निस्थानं प्रकीर्तितम्।
वह्निस्त्रिकोणं रक्तं च रेफाक्षर समुद्भवम्॥
वह्नौ चानिलमारोप्य रेफाक्षरसवमुज्जलम्॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्रियक्षं वरदं रुद्रं तरुणादित्यसन्निभम् ।
भस्मोद्धूलित सर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन् ।।
धारयेत्पंच घटिका वह्निनाऽसौ न दह्यते ।
न दह्यते शरीर च प्रविष्टस्याग्निकुण्डके ।।

अर्थात्—गुदा से हृदय तक अग्नि का स्थान कहते हैं। अग्नि तीन कोण वाला, रक्त वर्ण का, 'र' अक्षर युक्त है। अग्नि में वायु का आरोप करके और 'र' अक्षर को समन्वित करके तीन नेत्र वाले, वरदायक, तरुण आदित्य के समान प्रकाशमान, सर्वांग में भस्म रमावे और प्रसन्न मन से भगवान् रुद्र का पाँच घड़ी ध्यान करे। वह अग्नि द्वारा भस्म नहीं किया जा सकता।

वायु तत्व

आहृदयाद्भ्रुवोर्मध्यं वायुस्थानं प्रकीर्तितम् ।
वायुः षट्कोणकं कृष्णं यकाराक्षर भासुरम् ।।
मारुतं मरुतां स्थाने यकाराक्षर भासुरम् ।
धारयेत्तत्र सर्वज्ञमीश्वर विश्वतोमुखम् ।।
धारयेत्पंचघटिका वायुवद् व्योमगो भवेत् ।
मरण न तु वायोस्तु भय भवति योगिनः ।।

अर्थात्—हृदय से भृकुटियों तक वायु का स्थान कहा गया है। यह छः कोण का, कृष्ण वर्ण वाला, 'य' अक्षर युक्त है। मरुत् स्थान में 'य' अक्षर के सहित सर्वज्ञ विश्वतोमुख ईश्वर का ध्यान करे। पाँच घड़ी तक ऐसा करने से वायु के साथ गमन की शक्ति प्राप्त होती और साधक वायु के कारण मरण को प्राप्त नहीं होता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आकाश तत्व

आभ्रू मध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते ।
व्योमवृत्तं च धूम्रं च हकाराक्षरभासुरम् ॥
आधाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शंकरम् ।
विन्दुरूपं महादेवं व्योमाकार सदाशिवम् ॥
सर्वायुधैर्धृताकारं सर्वभूषण भूषितम् ।
उमार्धदेहं वरदं सर्वकारणकारणम् ॥
आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद्ध्रुवम् ।
यत्र कुत्र स्थितो वाऽपि सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

अर्थात्—भृकुटी से मूर्धान्त आकाश का स्थान कहा गया है । व्योम वृत्ताकार, धूम्र वर्ण का तथा 'ह' अक्षर से प्रकाशमान है । आकाश तत्व में वायु का आरोप करके भगवान् शंकर का ध्यान करे । क्योंकि वे सदा-शिव ही विन्दु स्वरूप, महादेव एव व्योमाकार हैं । वे सब आयुधों से सम्पन्न, सभी भूषणों से विभूषित, पार्वती के अर्द्धांग, वरदायक एवं सभी कारणों के कारण हैं । उनकी धारणा आकाश में करने से अवश्य ही आकाश-गमन की शक्ति प्राप्त होती है । इसका साधक कहीं भी रहे, इसके प्रभाव से अत्यन्त सुखी रहता है ।

तत्वों के ध्यान का फल

आकाश तत्व का ध्यान करने से साधक को त्रिकाल का ज्ञान होजाता है । ब्रह्माण्ड का ऐसा कोई रहस्य नहीं, जिससे वह अनभिज्ञ रहता हो । अनुभवियों के अनुसार आकाश तत्व के अभ्यासी को अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाता है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वायु तत्व के ध्यान से साधक को आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। अथवा धरती पर भी वह इच्छानुसार चाहे जहाँ जाने में समर्थ होता है।

अग्नि तत्व के ध्यान से साधक को तीक्ष्ण धूप और अग्नि में प्रवेश करने पर भी जलने का अनुभव नहीं होता। अपनी सामर्थ्य से अधिक भोजन पचाने की शक्ति प्राप्त होती है तथा चाहे जितना जल निरन्तर पी सकता है। वह जल उदर में ही आत्मसात हो जाता है।

जल तत्व के ध्यान से जल में डूबे रहने की शक्ति प्राप्त होती है। वह जल के ऊपर चलने में समर्थ रहता है। साधक की क्षुधा, पिपासा का भी शमन हो जाता है।

पृथिवी तत्व के ध्यान से शरीर हलका हो जाता है और योगाभ्यासी को जो समाधि अवस्था होती है, उसमें धीरे-धीरे धरती से उठने लगता है।

षण्मुखी मुद्रा

इस मुद्रा के द्वारा तत्वों का ज्ञान बहुत शीघ्र होता है। इसलिए स्वर योगी इस मुद्रा का भी अभ्यास किया करते हैं। मण्डलब्राह्मणोपनिषत् में कहा है--

प्राणापानयोरैक्य कृत्वा धृत कुम्भको नासाग्रदर्शन दृढ़भावनया द्विकरांगुलिभिः षण्मुखीकरणेन प्रणवादि ध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीन भवति, तस्य न कर्मलेपः।

अर्थात्—प्राण और अपान को एक करके कुम्भक धारण करे और फिर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर कर दृढ़ भावना के साथ दोनों हाथों को अंगुलियों के द्वारा षण्मुखी मुद्रा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करके प्रणवनाद का श्रवण करे तो मन उसमें लीन होजाता है और वह साधक कर्मों में लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार यह मुद्रा तत्व मिश्रित स्वर ज्ञान के प्रवाह द्वारा परब्रह्म के आत्मा में दर्शन कराने में पूर्णतया सहायक सिद्ध होती है। श्लोक में 'द्विकरांगुलिभि:' कह कर मुद्रा के स्वर की जो रूप रेखा बताई है, उसको स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार समझना चाहिए—

दोनों हाथों और उनकी अँगुलियों के द्वारा दोनों नासा-छिद्रों, दोनों नेत्रों, दोनों कानों और मुख के द्वार बन्द कर लिये जाते हैं। नियम यह है कि दोनों नासापुटों में हाथों की मध्यमा अँगुलियाँ, दोनों नेत्रों में दोनों तर्जनियाँ, दोनों कानों में दोनों अँगूठे और दोनों ओष्ठों के मध्य में अनामिकाएँ इस प्रकार दृढ़ता पूर्वक रखनी चाहिए कि नाक, नेत्र, श्रोत्र और मुख के द्वार ठीक प्रकार से बन्द हो जाँय। क्योंकि उक्त द्वारों के बन्द होने पर मन भीतर ही भीतर उस अन्धकारमय ब्रह्माण्ड में लीन होकर आत्मा की खोज में लग जाता और अभ्यास को दृढ़ता होने पर सच्चिदानन्द ब्रह्म के दर्शन करने में सफल हो जाता है। फिर उसे बाह्य प्रपंच की प्रतीति नहीं रहती और लिप्त हुए कर्मफल का भी नितान्त क्षय हो जाता है।

षण्मुखी मुद्रा की सुसाध्यता

यह षण्मुखी मुद्रा वैसे तो अत्यन्त सरल और सुसाध्य है, फिर भी यदि इसके अभ्यास में गुरु की प्रसन्नता प्राप्त कर ली जाय तो इसकी सिद्धि में संशय नहीं नहीं रहता। अभ्यासी को प्रारम्भ में तो खिन्नता और साथ ही श्वासावरोध से दम घुटने जैसी प्रतीति होती है परन्तु धीरे-धीरे खिन्नता मिट कर मन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसी में रहने लगता है और फिर आत्मज्ञान का अनुभव हो जाता है।

मुद्रा के अभ्यासारम्भ में तत्वों के रंग दिखाई देने लगते हैं, फिर आकृति आदि का आभास होने लगता है। बाह्य नेत्रों के बन्द होने से अन्तर्दृग खुल जाते हैं तभी वर्ण और आकृति का प्रत्यक्ष होता है।

कानों के बन्द होने से भीतर का अनाहत नाद सुनाई देता है। नासा-छिद्रों के बन्द होने से पहिले तो घुटन का अनुभव होने लगता है भीतर का वायु भीतर रुकता है तो उदर और फुफ्फ़सों के फूलने से कष्ट प्रतीत होता है, परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास के दृढ़ होने पर वह सब सहज होजाता है और साधक को परमानन्दकी अनुभूति होती है और जीव ब्रह्ममय हो जाता है।

इसी मुद्रा के अभ्यास काल में तत्वों के बीजमन्त्रों का मानसिक जप और ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक को आत्म-दर्शन में सफलता प्राप्त होती है।

वायुओं का नाड़ियों से सम्बन्ध

शरीर में रक्तवाहिनी और वातवाहिनी के भेद से दो प्रकार की नाड़ियाँ मानी गई हैं। जिन नाड़ियों में वायु का प्रवाह न्यून और रक्त का प्रवाह अधिक हो वे रक्त वाहिनी नाड़ियाँ कहलाती है। तथा जिन नाड़ियों में वायु का प्रवाह अति वेग से होता है उन्हें वातवाहिनो या प्राणवाहिनी कहते हैं। वैसे रक्त का प्रवाह वायु का रहना स्वाभाविक है परन्तु गति की तीव्रता में न्यूनाधिक के भेद से ही इनके दो भेद माने गए हैं।

शरीर में पाँच वायु और पाँच उपवायु रहते हैं। योग चूडामण्युपनिषत् में कहा है-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्राणापान समानाख्या व्यानोदानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥
हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठ मध्यगः ॥
व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पंचवायवः ।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तथा ॥
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।
न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनंजय ॥

अर्थात्—प्राण, अपान, समान, व्यान उनाद, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय, यह वायु और उपवायु हैं। इनमें प्राण-वायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान नाभिदेश में, उदान कण्ठ में और व्यान सम्पूर्ण शरीर में रहता है। यह पाँच प्रधान वायु हैं। उद्गार अर्थात् डकार में नाग उन्मीलन में कूर्म, छींक में कृकर, जंभाई लेने में देवदत्त को जाने तथा धनं-जय वायु तो इतना सर्वव्यापी है कि वह मृत्यु के पश्चात् भी नहीं छोड़ता।

इस प्रकार की यह पंच वायु और पंच उपवायु शरीर के प्रत्येक भाग में जाने वाली सभी नाड़ियों में संजोवनो शक्ति का संचार करते रहते हैं। यदि इनका सचरण रुक जाये तो नाड़ियों का गति अस्वाभाविक हो जाती है, जिससे शरीर को चाहे जब अप्रत्याशित क्षति पहुँच सकता है।

स्वरयोग से रोगों का निवारण

रोगों के निवारण में स्वरयोग औषधि से भी अधिक कार्य करता है। औषधि के गुणावगुण की प्रत्यक्षता रोगी के बात,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पित्त, कफ के दूषित होने और रोग की स्थिति पर निर्भर करती है, जबकि स्वर योग अपने निश्चित नियमों के अनुसार सीधा प्रभाव दिखाता है। इसलिए स्वरयोग का महत्व औषधि योग से अधिक फलप्रद स्वीकार किया गया है।

स्वर परीक्षा से रोग का निदान

रोग का निदान स्वर की परीक्षा से किया जाता है, उसमें यह जानना आवश्यक होता है कि रोग के आरम्भ के समय कौन-सा स्वर चल रहा था। यदि इसका पता नहीं लगता तो रोग का निदान तुरन्त सम्भव नहीं है। वरन् उस अवस्था में यह देखना होगा कि रोग की वृद्धि किस स्वर से होती है ? और इसका पता लगने पर रोग की जानकारी सुगम होजाती है।

स्वर-परिवर्तन से रोगी का तीव्रता का ह्रास

जिस स्वर से रोग का आरम्भ हुआ हो अथवा जिस स्वर से रोग की वृद्धि होरही हो तो उस स्वर को तुरन्त बदल देना आवश्यक है। स्वर के बदलने की विधि पहले बता चुके हैं, वह है करवट बदल लेना उदाहरणार्थ यदि चन्द्र स्वर को हटा कर सूर्य स्वर चलाना हो तो बाँयी करवट लेटने में स्वर बदल जायगा। इसी प्रकार सूर्य स्वर रोक कर चन्द्र स्वर चलाने के दाँयी करवट लेटे।

यदि मार्ग चलते समय में स्वर बदलना आवश्यक हो तो जिस नासापुट का स्वर चल रहा हो, उस नासापुट की अंगुलियाँ अँगूठे से बन्द कर लेना चाहिए। इससे वह स्वर रुकने से दूसरा स्वर स्वतः चलने लगता है। इसका एक उपाय नासा-छिद्र में रुई या कपड़ा लगा लेना भी है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस प्रकार स्वर का परिवर्तन रोग के वेग को कम करने में सहायक होता है और धीरे-धीरे रोगी स्वस्थ होने लगता है। परन्तु यह उपाय रोग के आरम्भ में ही कर लिया जाय तो शीघ्र फलप्रद होता है। विलम्ब से किये जाने वाले उपचार का फल भी विलम्ब से ही होना स्वाभाविक है।

प्रश्न के द्वारा रोग का ज्ञान और फलाफल

अनेक बार स्वर योगी के पास रोगी के दूत आकर उसके स्वास्थ्य अस्वास्थ्य, जीवन-मरण आदि के विषय में प्रश्न किया करते हैं। अवश्य ही स्वरयोगी को निम्न प्रकार का ज्ञान हो तो उसके उत्तर निःसन्देह सही बैठते हैं।

यदि स्वरयोगी का सूर्य स्वर चलता हो और दूत उसी ओर बैठकर या खड़े रहकर रोगी के सम्बन्ध में भय, शंका या निराशा भी उद्गार व्यक्त करे तो समझना चाहिए कि रोगी बच जायगा।

यदि प्रश्नकर्त्ता स्वर योगी के शून्य अङ्ग की ओर खड़ा होकर या बैठकर प्रश्न करे तो समझना चाहिए कि रोगी का बचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसके विपरीत यदि प्रश्नकर्त्ता योगी के पूर्णाङ्ग की ओर स्थित है तो रोगी को मृत्यु भी नहीं मार सकती।

यदि योगी का शिव स्वर चल रहा हो और उस समय प्रश्नकर्त्ता के दाँये या बाँये दोनों में से किसी एक भी स्वर का प्रवेश होरहा हो तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।

यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदाता के बन्द स्वर की ओर स्थित होकर फिर चलने वाले स्वर की ओर स्थित होजाय तो असाध्य रोगी भी ठीक होजाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि प्रश्नकर्त्ता योगी के बांयी ओर स्थित हो और रोगी का दक्षिण स्वर चल रहा हो तो रोगी के बचने की सम्भावना नहीं समझी जाती।

यदि योगी का शिव स्वर चल रहा हो और उसके साथ चन्द्रस्वर की प्रबलता हो और प्रश्नकर्त्ता के शिवस्वर के साथ सूर्य स्वर की प्रबलता हो तो रोगी का बचना असम्भव माना जाता है।

रोगी के स्वर-संचार से मृत्यु का ज्ञान

जिस रोगी का निरन्तर एकमात्र स्वर चन्द्र ही चलता रहे और उसमें कभी भी परिवर्तन न हो तो यह उसके रुग्णावस्था में रहते हुए तीन वर्ष में मृत्यु होने का सूचक है।

यदि निरन्तर सूर्य स्वर चलता रहे और तीन दिन तक उसमें कुछ भी परिवर्तन न हो तो रोगी की शेष आयु दो वर्ष मानी जाती है।

यदि बाँये या दाँये में से कोई-सा भी स्वर निरन्तर बहुत दिनों तक चले तो उसका अर्थ होगाकि रोगी की आयु एक वर्ष से अधिक शेष नहीं है।

रात्रि में रोगी का चन्द्र स्वर चलना और दिन में सूर्य स्वर चलना रोगी की अशुभ स्थिति का सूचक है, जिसके अनुसार छः मास ही जीवन का शेष रहना माना गया है।

यदि निरन्तर दो सप्ताह से अधिक दिन-रात एकमात्र सूर्य स्वर ही चले तो यह आयु के एक मास हो शेष रहने का सूचक है। इसी प्रकार दिन रात चन्द्रस्वर चलने पर भी एक मास का ही जीवन समझना चाहिए।

निरन्तर चलते हुए सूर्य या चन्द्रस्वर के बदलने का उपाय करने पर भी न बदले तो रोगी की आयु का दो सप्ताह शेष रहना ही समझा जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मृत्यु से बचने के उपाय

मृत्यु के उक्त लक्षण होने पर भी स्वर-परिवर्तन का निरन्तर प्रयत्न किया जाय तो काल का दुरतिक्रम करने में पूर्ण सहायता मिल सकती है। अभ्यास की दृढ़ता वाला व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता।

स्वर और स्वास्थ्य

जिसका चन्द्र स्वर दिन में और सूर्य स्वर रात्रि में निरन्तर चलता हो, तो यह लक्षण उसके दीर्घायु होने का सूचक है। यदि इसका विपरीत क्रम हो तो अभ्यास द्वारा बदल लेने से पूर्ण स्वस्थता रहती है।

भोजन के समय सूर्य स्वर चलना उपयोगी है, क्योंकि इससे पाचन क्रिया ठीक रहती है। भोजन के पश्चात् भी ढाई घड़ी (एक घटा) इस प्रकार करवट लेकर लेटे कि सूर्यस्वर ही चलता रहे। उदर विकार वालों के लिए तो यह क्रिया बहुत ही उपयोगी है।

सूर्य में जो शक्ति निहित है, उससे बल की नितान्त वृद्धि होती है। व्यायाम के समय भी सूर्य स्वर का चलना कम लाभदायक नहीं। यह स्वर पुरुष के पौरुष को पुष्ट करने में भी प्रभावशाली है।

यदि शरीर में अधिक उष्णता प्रतीत होती हो तो चन्द्र-स्वर के चालन से और सर्दी प्रतीत हो तो सूर्य स्वर के चालन से लाभ होता है।

प्रतिश्याय, सर्दी की खाँसी आदि के साथ चन्द्रस्वर चलना हानिकारक है, ऐसे रोगी को सूर्यस्वर चलाने का प्रयत्न करना चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नारी-संसर्ग में स्वरादि का प्रभाव

गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम सहज रूप से रहना चाहिए। जिन घरों में ऐसा व्यवहार है, वे घर स्वर्गीय सुख और ऐश्वर्य से ओत-प्रोत रहते हैं। क्योंकि पति-पत्नी का एक मत रहना ही उनमें ऐक्य स्थापित किये रहता है।

अनेक घरों में कलह रहने से दाम्पत्य जीवन दुःखमय बना रहता है और कभी-कभी तो दोनों ओर से कलह दूर होने के लिये किये जाने वाले प्रयास भी असफल होजाते हैं। उस स्थिति में गृहस्थाश्रम रूपी गाड़ी अधर में लटक जाती है और पति-पत्नि दोनों का ही चित्त अशान्त बना रहता है।

स्वरयोग गृहस्थाश्रम को सुचारु रूप से चलाने में भी अत्यन्त सहायता करता है। इसके अनुसार किये जाने वाले स्वर-संचालन से दाम्पत्य जीवन ही सुख-मय नहीं होता, वरन् वन्ध्यात्व जैसी विकट समस्या का भी समाधान हो जाता है और इच्छानुसार सन्तान अर्थात् पुत्र या पुत्री का उत्पन्न करना तो स्वर-साधक के लिए अत्यन्त ही सुगम है।

दाम्पत्य जीवन को प्रेममय बनाने के उपाय

यदि पुरुष स्त्री के चन्द्र स्वर को अपने सूर्य स्वर से आकर्षित करके हृदय में रोक ले तो कुछ दिन ऐसी अभ्यास करने से स्त्री पुरुष के प्रेम में निमग्न हो जाती है। इसकी क्रिया इस प्रकार है कि स्त्री का चन्द्र स्वर और पुरुष का सूर्य स्वर चल रहा हो तब स्त्री के निकलते हुए चन्द्र स्वर को पुरुष अपने सूर्य स्वर से खीच कर भीतर रोके। यह अभ्यास स्त्री सो रही हो तब आधी घड़ी से एक घड़ी पर्यन्त करना चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यदि रात्री के तृतीय प्रहर में सोती हुई स्त्री का शिव स्वर चल रहा हो, उस समय स्त्री के उस स्वर को अपनी नासिका में खींचने से स्त्री उस पुरुष के वश में होजाता है, परन्तु इसका अभ्यास कुछ दिनों तक निरन्तर करना चाहिए।

जब स्त्री-पुरुष दोनों का ही शिव स्वर चल रहा हो तब स्त्री के शिव-स्वर का प्रवाह पुरुष अपने शिव-स्वर में आकर्षित करे और फिर अपने स्वर को स्त्री के स्वर में प्रविष्ट कर मिला दे। इस प्रकार परस्पर दोनों के शिव-स्वर का एक होना अनन्य प्रेम का कारण बन जाता है। इसका अभ्यास न्यूनतम तीन सप्ताह करने से सफलता प्राप्त होती है।

यदि दोनों का शिव स्वर चलता हो और दोनों ही एक-दूसरे के शिव स्वर को अपने में आकर्षित करें तो प्रेम की दृढ़ता में बहुत कुछ सिद्धि प्राप्त होगी और फिर पति-पत्नी में कलह का प्रसंग उपस्थित नहीं होगा।

समागम-काल में स्त्री के चलते हुए चन्द्र स्वर को पुरुष अपने चलते हुए सूर्य स्वर से खींचता और फिर अपना सूर्य स्वर उसके चन्द्र स्वर वाले नासा पुट में घुसाता है तो दोनों में परस्पर प्रेम की भारी वृद्धि होती है। यदि उस समय पुरुष का सूर्य स्वर न चल रहा तो उसे चलाना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री का चन्द्र स्वर न चल कर सूर्य स्वर चल रहा हो तो उसे भी बदलने की विधि अपनानी चाहिए। यह प्रयोग प्रेम की स्थिरता में सफलता उत्पन्न करता है।

यदि पुरुष का चन्द्र स्वर चलता हो और स्त्री का सूर्य स्वर उस समय पुरुष स्त्री के स्वर को और स्त्री पुरुष के स्वर को खीच कर अपने में मिला लेती है तो उन दोनों में अत्यन्त प्रेम होता है। इसमें पुरुष को स्त्री के स्वर से अपना तीन, पाँच, सात

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और नौ बार तथा स्त्री को पुरुष के स्वर से अपना स्वर दो, चार, छः, आठ बार मिलाना चाहिए ।

स्त्री-पुरुष परस्पर के विपरीत स्वरों का आकर्षण करने वाले अभ्यास में सफलता प्राप्त कर लेते हैं तो उन दोनों में दृढ़ प्रीति रहती है । परन्तु दोनों का समान स्वर चलता हो तो वह लाभकारी नहीं होता ।

गर्भाधान में स्वरों की महिमा

गृहस्थाश्रम का उद्देश्य योग्य सन्तान द्वारा कुल की वृद्धि के साथ यश की वृद्धि करना भी है । यदि कुसन्तान होनी है तो उससे कुल की वृद्धि चाहे हो जाय, परन्तु यश के स्थान पर तो अपयश ही हाथ लगता है । इसलिए सभी गृहस्थ श्रेष्ठ सन्तान के लिए ही लालायित रहते हैं ।

परन्तु श्रेष्ठ सन्तान की लालसा स्वतः तो बड़े भाग्य से ही पूर्ण होती है, सब किसी को उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं होती इसलिये जो स्वर योग के साधक हैं, वे अपने अभ्यास की दृढ़ता इच्छित पूर्ण कर लेने में सफल हो जाते हैं । क्योंकि स्वरयोग का ही वह माहात्म्य है, जिससे कि साधक कुसन्तति को सुसन्तति के रूप में बदल लेने में सफल हो जाता है ।

नीचे हम उन स्वरोपायों का वर्णन करेंगे, जिनके द्वार साधक पुत्र के या पुत्री के रूप में इच्छित सन्तान पा लेता है, परन्तु इसके लिए अभ्यास में दृढ़ता होना अत्यन्त आवश्यक है ।

ऋतुमती साथ प्रारम्भिक चारदिन समागम के लिए निषिद्ध होते हैं । इसके अनन्तर पाँचवें, सातवें, या नवें दिन संसर्ग करना चाहिए । कुछ विद्वान् इस मत को न मान कर कहते हैं कि चौथे छठे, आठवें, दशवें आदि पूर्ण दिनों में समागम होने से पुत्र और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाचवें, सातवें आदि ऊर्ण दिनों में संसर्ग होने से कन्या की प्राप्ति होती है।

इच्छित सन्तान की प्राप्ति

मोटे तौर पर यह कहना आवश्यक होगा कि यदि समागम काल में स्त्री दाँयी करवट से और पुरुष बांयी करवट से लेटा हो तो उससे पुत्र की ही उत्पत्ति होती हैं। इसके विपरीत स्त्री बाँयी करवट से और पुरुष दाँयी करवट से लेटे तो उसके फलस्वरूप कन्या उत्पन्न होती है।

पुरुष दाँया स्वर और स्त्री का बाँया स्वर चलते में दम्पत्ति-संसर्ग हो तो पुत्र ही होगा। इसके विपरीत होने से फल की विपरीतता अर्थात् कन्या होगी, यह स्वरयोग का सिद्धान्त है।

परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि समागम काल में स्त्री का शिव स्वर और पुरुष का सूर्य स्वर चलता हो तो उससे होने वाला सन्तान भाग्यहीन, दरिद्र और कुरूप उत्पन्न होती है, इसलिए या तो स्वर-परिवर्तन करले अथवा उस स्थिति में समागम ही न करे।

यह भी मान्यता है कि समागम काल में तो पुरुष का सूर्य स्वर चलता हो और स्खलन कार्य में सूर्य स्वर हट कर चन्द्र स्वर हो जाय तो, वह एक ऐसा सुयोग होगा, जिससे कि सर्व प्रकार से योग्य और सम्पन्न पुत्र होगा।

स्वर एवं तत्वों के योग से सन्तानोत्पत्ति

रात्रि में स्त्री-पुरुष-सहवास के समय पुरुष का तो सूर्य स्वर चलता हो और स्त्री का जलतत्व मिश्रित चन्द्रस्वर चलता हो तो बन्ध्यात्व नष्ट होता और सुन्दर पुत्र की प्राप्ति होती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गर्भाधान में पृथ्वी तत्व का अत्यधिक महत्व है। सहवास के समय पुरुष का पृथिवी तत्व प्रवाहित होना गर्भस्थितिके लिए भी रहना चाहिए। इससे सुन्दर, बलिष्ठ, यश और ऐश्वर्य से सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होता है।

यदि क्षरण से पूर्व पृथिवी तत्व चलता हो और क्षरण काल में जल तत्व का आविर्भाव हो जाय तो उससे षण्ड की उत्पत्ति सम्भव होती है।

यदि गर्भाधान करते समय पुरुष का जलतत्व प्रवाहित हो तो उससे पुत्री का जन्म होता है। परन्तु वह पुत्री भी माता-पिता का यश बढ़ाने वाली और भाग्यवती होती है। उसका विवाह ऐश्वर्यशाली कुल में होता और उत्तरोत्तर धन की वृद्धि होती जाती है।

यदि गर्भाधान के समय जलतत्व की तीव्रता के साथ पृथिवी तत्व की भी आंशिक उपस्थिति हो तो उससे जो पुत्री उत्पन्न होगी, वह विपरीत-रति में अधिक रुचि लेने वाली होगी।

यदि क्षरण से पहले जल तत्व का प्रवाह चलता हो और वह क्षरण के समय मन्द हो जाय तथा साथ ही अग्नि तत्व उपस्थित हो जाय तो उसके फल स्वरूप तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होता है।

यदि गर्भाधान काल में जल तत्व और अग्नि तत्व दोनों ही उपस्थित हों तो उससे पुत्र या पुत्री अत्यन्त फाग्यशालो सन्तान होती है।

अग्नितत्व का गुण तेजस्विता है। इसके प्रवाहकाल में गर्भाधान होने से जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त सुन्दर होती हुई भी निर्बल या स्वल्प आयु वाली होती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तेज तत्व के प्रवाह में किया जाने वाला गर्भाधान यद्यपि पुत्र उत्पन्न करने वाला होता है, तथापि वह पुत्र अधिक आयु तक जीवित नहीं रहता यदि प्रवाह तीव्र और अधिक देर से चल रहा हो तो गर्भस्थ शिशु उत्पन्न होने से पूर्व ही नष्ट हो जाता है।

क्षरण-काल में तेज तत्व का प्रवाह क्षीण हो तो उसका प्रभाव बालक पर भी कम रहता है और वह रोगादि से ग्रस्त या निर्बल रहता हुआ भी पूर्ण आयु भोगता है।

क्षरण काल में वायु तत्व चलता हो तो उससे जो सन्तान होगी, वह दीर्घजीवी नहीं होगी और जब तक जीवित रहती है, तब तक रोगी और दुःखी रहती है। इसमें यह नियम नहीं है कि पुत्र हो या पुत्री, अर्थात् पुत्र या पुत्री में से कोई भी हो सकती है।

कुछ अनुभवियों के मत में वायुतत्व के प्रवाह में किया गया गर्भाधान निष्फल होता है। क्योंकि वह गर्भ टिकता नहीं। या तो गर्भस्राव या गर्भपात होजाता है अथवा प्रसव होते ही शिशु की मृत्यु हो जाती है।

आकाश तत्व निष्फल होता है, यह पहले ही बता चुके हैं। यदि इस तत्व के प्रवाह काल में गर्भाधान या तो होता ही नहीं अथवा हो जाय तो ठहरता नहीं।

यदि क्षरण-काल में आकाश तत्व निर्बल हो तो उससे उत्पन्न गर्भ का शिशु षण्ड होता है। यदि उस समय इस तत्व के साथ वायु तत्व की भी उपस्थिति हो तो समझना चाहिए कि वह गर्भ जन्म से पूर्व ही समाप्त होजाता है।

इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि अग्नि, वायु और आकाश तत्व के प्रवाह काल में किया जाने वाला गर्भाधान

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निकृष्ट और निरर्थक होता है, इसलिए उस अवस्था में गर्भाधान न करना ही श्रेयस्कर है। श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति के लिए पृथिवी तत्व और जलतत्व ही उत्तम माने गये हैं।

गर्भाधान विषयक प्रश्न और निष्कर्ष

गर्भ में पुत्र, पुत्री या षण्ढ (नपुंसक) है, दीर्घजीवी है या अल्पजीवी ? इन सबका उत्तर स्वरयोगी सहज में ही दे सकता है।

प्रश्न के समय स्वरयोगी का चन्द्र स्वर चलता हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। सूर्य स्वर चलता हो तो पुत्र और शिवस्वर चलता हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है। अथवा गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है।

इसमें भी एक भेद यह है कि प्रश्नकाल में स्वरयोगी का शिव स्वर मध्यम गति से चल रहा तो गर्भस्थ शिशु नपुंसक होगा और तीव्र गति से चल रहा तो गर्भ नष्ट हो जायगा। यदि स्वर की गति मन्द होगी तो वन्ध्यत्व युक्त कन्या उत्पन्न हो सकती है।

प्रश्नकाल में स्वरयोगी का पृथिवी तत्व चलता हो तो उससे कन्या उत्पन्न होती है। यदि जलतत्व चले तो समझना चाहिए कि पुत्र की उत्पत्ति होगी। अग्नितत्व का संचार हो तो गर्भ का नष्ट होना सम्भव है।

वायु तत्व का प्रवाह हो तो पुत्री का उत्पन्न होना समझें और आकाश तत्व प्रवाहित रहे तो गर्भ का न टिकना बतावे।

यदि प्रश्नकाल में सूर्य स्वर का प्रवाह हो और उत्तर देने के समय वह प्रवाह बदल कर चन्द्रस्वर चल पड़ा हो तो

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझना चाहिए कष्टमय प्रसव होगा परन्तु पुत्र की ही उत्पत्ति होगी।

यदि प्रश्न के समय चन्द्र स्वर चलता हो और उत्तर काल में बदल कर सूर्य स्वर चलने लगे तो अधिक कष्ट युक्त प्रसव वेदना के उपरान्त कन्या उत्पन्न होगी। परन्तु वह कन्या सभी के लिए हितकारिणी रहेगी।

यदि प्रश्नकाल के समय चलता हुआ सूर्य स्वर या चन्द्र-स्वर उत्तर के समय बदल कर चन्द्र स्वर या सूर्य स्वर के रूप में तीव्रता से चलने लगे तो उस स्वर-परिवर्तन का झटका यह व्यक्त करता है कि गर्भस्थ शिशु आपरेशन से निकलता है।

यदि प्रश्नकाल में सूर्य स्वर या चन्द्रस्वर चलता हो और उत्तर काल में बदल कर शिव स्वर हो जाय तो प्रसव के पश्चात् प्रसवा का जीवनान्त हो जाता है। यदि शिवस्वर के वेग में तीव्रता हो तो समझना चाहिए कि जच्चा-बच्चा दोनों में से कोई भी नहीं बचेगा। यदि स्वर में मन्दता है तो जच्चा अधिक कमजोर और ज्वरादि से पीड़ित होगी तथा शिशु भी निर्बल होगा।

पूर्णांग-रिक्तांग का वर्णन

स्वर योग में पूर्ण अङ्ग और रिक्त अङ्ग तकनीकी शब्द हैं। इनका प्रयोग प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता की स्थिति का सूचक होता है। तात्पर्य यह है कि प्रश्नकर्त्ता की स्थिति उत्तर-दाता के उस ओर हो, जिस ओर कि उत्तरदाता का चन्द्र या सूर्य में से कोई स्वर चलता हो तो स्वर प्रवाह वाला वह भाग उत्तरदाता का पूर्ण अङ्ग माना जाता है।

उत्तरदाता के जिस अङ्ग में स्वर प्रवाह न हो रहा हो उस ओर प्रश्नकर्त्ता स्थित हो तो उत्तरदाता का वह भाग रिक्त अङ्ग

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होता है। निष्कर्ष यह है कि यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदाता के स्वर प्रवाह वाले अङ्ग की ओर बैठे तो वह उत्तरदाता का पूर्ण अङ्ग और स्वर-प्रवाह रहित अङ्ग की ओर बैठे तो वह रिक्त अङ्ग कहलाता है।

पूर्णाङ्ग-रिक्तांग की परीक्षा

अनेक बार ऐसा होता है कि यह पता नहीं लगता कि कौन-सा स्वर चल रहा है, उस स्थिति में पूर्णांग या रिक्तांग का ज्ञान नहीं हो सकता। तब इसकी परीक्षा का एक उपाय यह है कि उत्तरदाता अपने मन को स्थिर करके खड़ा हो जाय और एक सुगन्धित पुष्प को हाथों की अजलि में रखकर शिवजी का स्मरण करता हुआ पुष्प को अन्जलि से उछाल दे वह पुष्प शरीर के जिस भाग की ओर गिरे वह पूर्णाङ्ग समझना चाहिए।

कालांग का वर्णन

यह भी संभव है कि उछाला हुआ पुष्प शरीर के इधर-उधर के भाग की ओर न गिर कर, सामने गिरे तो उस अवस्था में कालांग समझना चाहिए। उस अङ्ग में स्थित होकर पूछे जाने पर गर्भ का नष्ट होना संभव है। यदि पुष्प ठीक नाक की सोध में गिरा हो तो उसके फलस्वरूप गर्भिणी की मृत्यु तक होना सम्भव है।

पूर्णाङ्ग-रिक्तांग में प्रश्न का फलाफल

यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तारदाता के पूर्णाङ्ग की ओर बैठकर या खड़ा होकर प्रश्न करे तो पुत्र का जन्म होना समझना चाहिए। वह पुत्र स्वस्थ और भाग्यशाली होगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उत्तरदाता के रिक्तांग की ओर स्थित होकर किये जाने वाले प्रश्न के फलस्वरूप पुत्री का उत्पन्न होना कहे। वह पुत्री सौभाग्यशालिनी होती है।

कुछ विद्वानों का मत है कि स्वरयोगी के रिक्तांग की ओर प्रश्न करना विपरीत फल का बोधक है। उसके परिणाम स्वरूप पुत्र हो या पुत्री, दुर्बल और ऐश्वर्यहीन होगी।

यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदाता के ठीक सामने बैठा हो तो वह अशुभ परिणाम का सूचक होता है। उससे गर्भपात या प्रसवा के लिए प्राणान्तक कष्ट हो सकता है। कुछ विद्वानों के मत में, इस स्थिति में युग्म सन्तति (जुड़वाँ बच्चे) उत्पन्न होते हैं।

इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्नकर्त्ता ठीक सामने (नाक के सामने नाक करके) न बैठा हो और उसमें कुछ अन्तर हो तो फल में भी अन्तर हो जायगा। इसी प्रकार पूर्णाङ्ग और रिक्ताङ्ग की स्थिति में किंचित् भेद होने से परिणाम भेद अवश्यंभावी है।

उत्तरदाता के पूर्णाङ्ग या रिक्ताङ्ग की ओर बैठ कर प्रश्न करने की विधि से रोगों के शुभ या अशुभ परिणामों को भी जाना जा सकता है। इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डालना उपयुक्त होगा—

पूर्णाङ्ग-रिक्तांग से रोग के शुभाशुभ फल का ज्ञान

यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदाता के पूर्णाङ्ग की ओर बैठ कर प्रश्न करे तो समझना चाहिए कि रोगी सुसाध्य है और वह ठीक हो जायगा, जबकि रिक्तांग की ओर बैठकर किये गये प्रश्न से रोगी की मृत्यु का अनुमान होता है।

यदि प्रश्नकर्त्ता पहले रिक्तांग की ओर अवस्थित हो और फिर सहसा उठकर पूर्णाङ्ग की ओर जा बैठे तो रोग की अवस्था

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

असाध्य होते हुए भी, ठीक होजाता है। परन्तु इसके विपरीत प्रारम्भ में उत्तरदाता के पूर्णांग की ओर बैठा हुआ दूत यदि उत्तर मिलने से पूर्व रिक्ताङ्ग की ओर जा बैठे तो रोगी की दशा ठीक होते हुए भी उसका बचना कठिन समझना चाहिए।

कुछ अनुभवियों के अनुसार प्रश्नकर्त्ता अपने पूर्णाङ्ग की ओर से ही उत्तरदाता के पूर्णाङ्ग को ओर स्थित हो तो रोगी कैसा भी मरणासन्न क्यों न हो, शीघ्र ही आरोग्य लाभ करता है।

उत्तरदाता के रिक्तांग की ओर अपने पूर्णांग से बैठे हुए प्रश्नकर्त्ता को रोगविषयक प्रश्न के उत्तर में यह बताना चाहिए कि रोगी अत्यन्त कष्ट झेल कर भी मरेगा नहीं।

इस प्रकार स्वर साधक को अपने और दूत के, दोनों के ही पूर्णांग और रिक्तांग पर पूरी तरह विचार करके ही उत्तर देना चाहिए। बिना विचारे फल की घोषणा कर देना रोगी और उसके उपचारकों के लिए तो दुःखदायी होगा हो साधक के लिए भी अपयश का कारण हो सकता है, जबकि विचारपूर्वक दिये गये उत्तर के चमत्कार से सभी प्रभावित हो सकते हैं।

स्वर साधक के लिए प्रणव जाप का महत्व

स्वर-साधना में प्रणव अर्थात् 'ओ३म्' के जप का अत्यधिक महत्व है। प्रणव-जाप से आत्म शुद्धि और शरीर-शुद्धि होती है शास्त्रों के अनुसार प्रणव ही ससार की उत्पत्ति म कारण है। वही सब प्रकार के स्वरों का आदि है। 'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा' इत्यादि (ध्यानविन्दूपनिषत्) के अनुसार 'प्रणव धनुष, आत्मा बाण और ब्रह्म लक्ष्य है। बाण से सावधानी के साथ तन्मय होकर इस लक्ष्य वेध करने और 'अवर' को जान लेने से सब क्रियाओं से निवृत्ति हो जाती है। इसी उपनिषत् में कहा है—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ओंकार प्रभवा देवा ओंकार प्रभवाः स्वरा ।
ओंकार प्रभवं सर्व त्रैलोक्यं स चराचरम् ।।

अर्थात् - ओंकार से देवता उत्पन्न हुए ओंकार से ही स्वर उत्पन्न हुए और ओंकार से हो चराचरमय तीनों लोक उत्पन्न हुए ।

इस प्रकार प्रणव को जगत का आदि कारण जान कर स्वर योगी को यथाशक्ति प्रणव-जाप में तत्पर रहना चाहिए, क्योंकि 'ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः सम्पत्प्रदोऽव्ययः' इत्यादि से प्रणव का ह्रस्व अन्श पापों का हरण करता, दार्घ अन्श अव्यय रूप सम्पत्ति प्रदान करता है। इस प्रकार अर्द्धमात्रायुक्त प्रणव मोक्ष का देने वाला है ।

स्वर योग से साधन

स्वर-साधक को अभ्यास आरम्भ करने से पूर्व साधना के अनुरूप नियमों का पालन करना होता है। इस विषय में शिव-पुराण में अधिकारी साधकों के लिए निम्न विधान का निर्देश हुआ है-

त्रिः स्नानंचाग्निकार्यं च लिगार्चननुक्रमम् ।
दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा ।।
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यमहिमा सर्वजन्तुषु ।
ह्री श्रद्धाध्ययनं योगः सदाध्यापनमेव च ।।
व्याखानं ब्रह्मचर्यं च श्रवणं च तपः क्षमा ।
शौचं शिखोपवीतं च उष्णीषं चोत्तरीयकम् ।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निशिद्धासेवनं चैव भस्मरुद्राक्षधारणम् ।
पर्वण्यभ्यर्चनं देवि चतुर्दश्यां विशेषतः ।।
पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि ।
अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्यं मां प्रिये ।।

शिवजी ने पार्वतीजी के प्रति कहा—हे देवि ! त्रिकाल स्नान करे, अग्नि कार्य, लिङ्ग-पूजन, दान, शिवभाव युक्त दया, सत्य, सन्तोष, आस्तिकता, अहिंसा, लज्जा, श्रद्धा, वेदाध्ययन, योग, व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, श्रवण, तप, क्षमा, शौच, शिखा, यज्ञोपवीत, पगड़ी और दुपट्टा धारण करे। निषिद्ध वस्तु का सेवन न करे, भस्म रुद्राक्ष धारण करे, पर्वकाल में, विशेषकर चतुर्दशी में पूजन करे। प्रतिमास ब्रह्मकूर्च की विधि से गव्य-पान करे और उसी गव्य से मुझे स्नान कराता हुआ, मेरा विशेष रूप से अर्चन करे।

सर्वक्रियान्नसन्त्यागःश्राद्धान्नस्य च वर्जनम् ।
तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषतः ।।
मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ।
सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः ।।
क्षमा शान्तिश्च सन्तोषः सत्यमस्तेयमेव च ।
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्य भस्म सेवनम् ।।
सर्व सगनिवृत्तश्च दशैतानि विशेषतः ।
लिंगानि योगिनांभूयो दिवा भिक्षाशनं तथा ।।
वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते ।
रात्रौ नं भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अन्न का त्याग, और श्राद्धान्न तथा विशेषकर यावक का त्याग करे। मद्य, मद्य की गन्ध और मुझे अर्पित नैवेद्य का वर्जन सभी वर्गों का सामान्य रूप से और ब्राह्मण का विशेष रूप से कर्त्तव्य है। क्षमा, शान्ति, सन्तोष, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य वैराग्य, मेरा ज्ञान तथा भस्म का सेवन करे। सबके सङ्ग का और दश कार्य विशेष रूप से करे, क्योंकि योगियों के यह विशेष लक्षण है—दिन में भिक्षा माँगे। वानप्रस्थ आश्रम का धर्म भी समान है, योगी और यह समान धर्म वाले होते हैं। ब्रह्मचारी को रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए।

विरक्त पुरुषों की महिमा

विरक्ता वानुरक्ता वा स्त्रयादीनां विषयेष्वपि।
पापैर्न ते विलिम्पन्ते पद्मपत्र मिवाम्भसा॥
तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम्।
मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात्॥
नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम्।
न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा॥
तदेह परिपूर्णस्य साध्य मम न विध्यते।
तथैव कृतकृत्यानां तेशामपि न संशयः॥
मद्भक्तानां हितार्थाय मानुष भावमाश्रिताः।
रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः॥

जो स्त्रियादि विषयों से विरक्त हैं, वे कमलहत्र के जल से लिप्त न होने के समान पापों से लिप्त नहीं होते। मेरे प्रसाद

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

से ही उन विवेकी पुरुषों को आत्मविज्ञान प्राप्त होता है। उनके आश्रमधर्म की रक्षा करना बहुत ही कठिन होता है। उनके लिए कर्म, अकर्म, समाधि में परायणता या विधि-निषेध कुछ भी नहीं है। जैसे कि मुझ परिपूर्ण के लिए किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही जो लोग कृतकृत्य हो चुके हैं उनके लिए कोई साधन शेष नहीं रहता। मेरे भक्तों के हितार्थ मनुष्य भाव में आश्रित मनुष्य जो रुद्रलोक से (पुण्यफल भोग कर) आये हैं, वे रुद्र स्वरूप ही हैं।

कल्याण का एकमात्र साधन

ममानुशासनं यद्वत् ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम्।
तथा नराणामन्येषां तन्नियोगः प्रवर्तकः॥
ममाज्ञाधार भावेन सद्भावातिशयेन च।
तदालोकनमात्रेण सर्वपाप क्षयो भवेत्॥
प्रत्ययाश्च प्रवर्तन्ते प्रशस्तफल सूचकाः।
मयिभाववतां पुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः॥
यथायोऽग्निसमावेशान्नायो भवति केवलम्।
तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः॥
अर्थाकिं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम्।
मयि चित्त समासंगो येन केनापि हेतुना॥

मेरी आज्ञा जैसे ब्रह्मा को प्रवृत्त करती है, वैसे ही दूसरे मनुष्यों को भी योग में प्रवृत्त करती है। मेरी आज्ञा का धारण और मुझ में अत्यन्त भाव लगाने वालों के दर्शन से ही सब पापों का क्षय होजाता है। उन्हें श्रेष्ठ फल देने वाले विश्वासों की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्राप्ति होती है। मुझसे प्रेम करने वालों को अर्थ का ज्ञान पहले ही होजाता है। जैसे अग्नि के संयोग से लोहा केवल लोहा ही नहीं रहता, वैसे मेरे सामीप्य से मनुष्य केवल मनुष्य ही न रह कर मेरे समान हो जाते हैं। अधिक कहने से क्या ? कल्याण-प्राप्ति का एक मात्र साधन मुझ में ही चित्त लगाना है ?

इस प्रकार साधक को विभिन्न साधन करते हुए शिव भक्ति करना चाहिए, तभी स्वरयोग की सिद्धि हो सकती है।

योग-सिद्धि के विभिन्न फल

योग-सिद्धि से अष्टसिद्धियों, अष्ट ऐश्वर्यों और चौंसठ गुणों की प्राप्ति होती है। योगों का जो माहात्म्य हैं, वह स्वरयोग का भी है। उन सिद्धियों और गुणों का वर्णन करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

अष्ट सिद्धियाँ

सिद्धियाँ आठ हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व। इनमें अणिमा का कार्य है शरीर को अणु के समान सूक्ष्म बना देना। महिमा के द्वारा योगी अपने शरीर को बृहदाकार बना सकता है। गरिमा से शरीर बहुत भारी और लघिमा से बहुत हल्का हो जाता है। प्राप्ति से दूरस्थ पदार्थों को देखने, छूने या प्राप्त करने को क्षमता प्राप्त होती है। प्राकाम्य से इच्छाओं की पूर्ण रूप से उपलब्धि और ईशत्व से शरीर और मन के आन्तरिक सस्थानों और चक्रों पर पूर्ण प्रभुत्व और संसारभर के सभी पदार्थों को इच्छानुसार प्रयोग में लाने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। वशित्व से सभी पदार्थ और सभी परिस्थितियाँ वशवर्ती रहती हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कुछ योगशास्त्रों में अष्टसिद्धियों का वर्णन अन्य प्रकार से मिलता है। उनके अनुसार आत्मसिद्धि, विविधा सिद्धि ज्ञान सिद्धि तपसिद्धि, क्षेत्रसिद्धि, देवसिद्धि, शरीर सिद्धि और विक्रिया सिद्धि, यह आठ हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है —

आत्मसिद्धि में इन्द्रिय और मन का निग्रह, स्थितप्रज्ञता की प्राप्ति, समाधि, आत्म-साक्षात्कार, तत्वज्ञान, आत्मदर्शन, भूत-जय और मोक्ष प्राप्त होता है।

विविधा सिद्धि में पचतत्वों पर निन्त्रयण करने और उनके द्वारा अभीष्ट वस्तुएँ उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

ज्ञानसिद्धि में तीव्र स्मरण शक्ति, तीक्ष्ण बुद्धि, भूत-भविष्य की गटनाओं को जान लेना, पूर्वजन्म का वृत्तान्त जानना, शास्त्रों का सार समझना और वैराग्य आदि की उपलब्धि होती है।

तपसिद्धि में कठोर तपस्या की सामर्थ्य सर्दी-गर्मी के सहन में कष्ट न होना, भूखप्यास पर नियन्त्रण तथा जल, थल और आकाश पर भी विचरण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

क्षेत्रसिद्धि में अल्प स्थान में बहुत बड़ी वस्तुओं के सामने, सूक्ष्म शरीर से देश-देशान्तर में भ्रमण करने तथा शरीरस्थ देवताओं से साक्षात्कार करने की शक्ति प्राप्त होती है।

देवसिद्धि में देवता, यक्ष, गन्धर्व प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्म-राक्षस, छाया पुरुष आदि का अनुग्रह, स्वामित्व और सहयोग प्राप्त होता है। मन्त्रसिद्धि और कुण्डलिनी जागरण आदि की सामर्थ्य भो आ जाती है।

शरीर सिद्धि में साधक में अपार बल भर जाता है। दृष्टि मात्र या स्पर्शमात्र से दूसरों के रोगों और कष्टों को दूर करने की शक्ति प्राप्त होती है। स्वल्पाहार से अनेकों को तृप्त करना, शाप से चाहे जिसे नष्ट करना और वरदान से चाहे जिसे उपकृत करना तथा पदार्थों को सुगन्धित या स्वादिष्ट बना देना, अपना काया-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कल्प करना, दीर्घजीवन, प्राप्त करना अथवा अमर होजाना आदि उपलब्धियाँ होती हैं।

विक्रियाँ सिद्धि में परकाया प्रवेश या रूप बदल लेने की शक्ति प्राप्त होती है। शरीर को भारी, हलका, सूक्ष्म या वृहद् कर लेना, अन्तर्धान हो जाना, सबको वशीभूत रखना आदि सिद्ध होता है।

अष्ट ऐश्वर्य चौंसठ गुण

अब अष्ट ऐश्वर्यों और गुणों का विवेचन किया जाता है। इनके पार्थिव, जलीय, आग्नेय, मारुतेय, अम्बरेय, मानस, प्राजापत्य और ब्राह्म संज्ञक भेद हैं। इनमें से प्रत्येक के आठ गुण से सब कुल चौंसठ गुण हुए।

सूक्ष्म काय होना, वृहद् काय होना, इच्छामात्र से बालक बनना, युवा बनना, वृद्ध बन जाना, विभिन्न रूप धारण करना पृथिवी आदि चार तत्वों से सम्पन्न शरीर धारण कर लेना, सुगन्धित एवं अलौकिक वायु को चला देना, यह आठ गुण पार्थिव ऐश्वर्य के हैं।

जल में निवास, इच्छा मात्र से शुष्क स्थान में जल का प्राकट्य, अनन्त जलराशि का पान, सर्वत्र जल-दर्शन, शरीर के किसी भी अवयव में जल का धारण, शुष्क वस्तु में सरसता का प्राकट्य, जल-तेज-वायु युक्त शरीर का धारण और शारीरिक कष्टों का निवारण जलीय ऐश्वर्य के आठ गुण हैं।

अग्निमय होना, अग्नि में प्रवेश करना इच्छामात्र से चाहे जिसे भस्म कर देना, जल में अग्नि स्थापन करना, शरीर के किसी भी भाग में अग्नि को धारण करना, किसी वस्तु को भस्मीभूत करके पुनर्जीवित कर देना, भोजन को उदरस्थ किये बिना मुख में ही पचा लेना, और अग्नि-वायु युक्त शरीर धारण करना आग्नेय ऐश्वर्य के आठ गुण हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मारुतेय ऐश्वर्य के अष्ट गुण यह हैं– मन के समान गति, पराये शरीर में अदृश्य रूप से प्रवेश, बिना प्रयास ही पर्वत जैसी भारी और विशाल वस्तु को या पर्वत को उठा लेना, अपने शरीर को इतना भारी कर लेना कि उसे कोई हिला न सके, इतना हलका हो जाना कि रुई के तन्तु के समान हवा में उड़ सके, देह के किसी भी भाग में वायु को रोक लेना, इच्छामात्र से धरती प्रकट कर देना और वायु तत्व से युक्त शरीर का धारण करना।

आकाशगमन की शक्ति, इन्द्रियों का विलीनीकरण, विभिन्न इन्द्रियों का एक ही इन्द्रियों से कार्य लेना, शरीर को छाया-विहीन बना लेना, शरीर को व्योममय कर लेना, आकाश को पिण्ड के आकार का कर देना, आकाशस्थ ग्रहों के मध्य विचरना और देह-रहित होकर देह में पुनः प्रविष्ट होजाना, यह आठों गुण आकाश-सम्बन्धी ऐश्वर्य के है।

स्वेच्छापूर्वक गमन, इच्छित वस्तुओं की तुरन्त प्राप्ति, कर्मानुरूप वातावरण का निर्माण, दिन-रात आत्मदर्शन की प्राप्ति, आसन पर बैठे हुए सम्पूर्ण विश्व का दर्शन, सबका वशीकरण, सर्वाकर्षण और गुप्त पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान, यह आठ गुण मानस ऐश्वर्य के है।

प्राजापत्य ऐश्वर्य के यह आठ गुण माने जाते हैं—चाहे जिसे बन्धन में डाल देना, चाहे जिसे बन्धनमुक्त कर देना, चाहे जिसे इच्छामात्र से मार डालना, सब प्राणियों को प्रसन्न रखना, छेदन के अयोग्य पदार्थों का छेदन कर डालना, अलभ्य पदार्थ को इच्छामात्र से प्राप्त कर लेना, मृत्यु को जीत लेना और चाहे जिस जीव को बरबस अपने सामने बुला लेना।

संकल्प मात्र से जगत् को रचना, स्थिति करना, संहार कर देना, संसार का स्वामित्व प्राप्त करना, शुभ को अशुभ व अशुभ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को शुभ बना देना, अनुपमेयता प्राप्त करना, नया संसार बनाना और जीवमात्र के मन का प्रेरण करना, यह आठ गुण ब्राह्म ऐश्वर्य के हैं।

इस प्रकार प्रत्येक ऐश्वर्य के जो आठ-आठ गुण माने गये हैं उनमें प्रथम ऐश्वर्य को प्राप्ति से आठ गुणों की उपलब्धि होती है। फिर दूसरा ऐश्वर्य पाने पर सोलह और तीसरा गुण पा लेने पर चौबीस गुण प्राप्त हो जाते हैं। तदुपरान्त चौथा ऐश्वर्य उपलब्ध होने पर बत्तीस, पाँचवाँ ऐश्वर्य पाने पर चालीस, इस भाँति उत्तरोत्तर आठों ऐश्वर्य प्राप्त कर लेने पर चौंसठ गुण पूरे हो जाते हैं। जो योगी इन्हें प्राप्त कर लेता है, वही सर्वगुण सम्पन्न होता है। फिर इन गुणों से बढ़कर अन्य कोई गुण नहीं है। यही कैवल्य की प्राप्ति के परम साधन हैं।

योगाभ्यास से सर्व ऐश्वर्यों की सिद्धि

योग के अभ्यास से असम्भव भी सम्भव होजाता है, यह तथ्य उक्त वर्णन से स्पष्ट हुआ। योग से सम्बन्धित प्रणालियाँ बहुत हैं, यदि उन सब का वर्णन करने लगें तो, एक पूरा ग्रन्थ ही बन सकता है, इसलिए वैसा करना यहाँ अभीष्ट नहीं। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार – 'योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः' (यो० द० १।२) अर्थात् 'चित्त वृत्तियों का निरोग ही योग है।'

योग के छः अंग माने गये हैं—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनके फल का वर्णन करते हैं।

आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुंचति॥
धारणाभिर्मनोधैर्यं याति चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्॥

—योगचूडामण्युपनिषद्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आसन से रोगों का और प्राणायाम से पापों का नाश होता है। योगी के मानसिक विकार प्रत्याहार से दूर हो जाते हैं। धारणा से मन में धैर्य की और धैर्य से अद्‌भुत चैतन्य के ध्यान की जो प्राप्ति होती है, उसी से समाधि प्राप्त होकर शुभाशुभ कर्मों का नाश और मोक्ष की प्राप्ति होजाती है।

मण्डलब्राह्मणोपनिषत् ने ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी के दूर होने पर साधक का ज्योतिरूप एवं ब्रह्मवेत्ता होन कहा है। मन के द्वारा कल्पित प्रपंच का चैतन्य में लय हो जाता है, तब कोई भी भेद शेष नहीं रहता।

यस्य संकल्पनाशः स्यात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता तस्माद्भावाभावौ परित्यज्य परमात्मध्यानेन मुक्ता भवति। पुनः पुनः सर्वावस्थासु ज्ञानज्ञेयौ ध्यानध्येयौ लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादृश्ये चोहापोहादि परित्यज्ये जीवन्मुक्तो भवति। य एवं वेद।

—मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

अर्थात्—जिसके संकल्प का नाश होगया, उसी के हाथ में मुक्ति स्थित है। इसलिए भाव और अभाव को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। बार-बार, प्रत्येक अवस्था में ज्ञान और ज्ञेय का, ध्यान और ध्येय का, लक्ष्य और अलक्ष्य का, दृश्य और अदृश्य का तथा ऊहापोह आदि का त्याग करने से मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है। जो इसे जानता है, वह ब्रह्मज्ञानी होता है।

ब्रह्मज्ञान क्या है ?

आत्मा है, वही ब्रह्म है, इसलिए आत्मज्ञान में और ब्रह्मज्ञान में कोई अन्तर नहीं। तेजोबिन्दूपनिषत् में इस प्रकार कहा गया है कि—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
आत्मैवाहं परं सत्यं नान्या संसार दृष्टयः ॥
सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्द विग्रहः ।
अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः ॥
ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः ।
सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकः ॥
अहमेव सदाभामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत् ।
त्वमित्येवं परंब्रह्म चिन्मयानन्द रूपवान् ॥
अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्घनैक रसोऽप्यहम् ।
सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥

मैं ही सच्चिदानन्दमात्र हूं, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, आत्मा परम सत्य है, परन्तु संसार की दृष्टि सत्य नहीं है। मैं ही सत्य आनन्दस्वरूप, चिद्घन-आनन्द शरीर वाला मैं ही परमानन्द और पर से भी परे हूं। यह सब आकार ज्ञान का ही है, क्योंकि मैं तो ज्ञानानन्द रूप, अद्वैत, सर्व प्रकाश स्वरूप तथा सर्व अभाव स्वरूप हूं। मैं ही सदैव प्रकाशमान हूं तो फिर मुझसे ऐसा असत् रूप कैसे हो सकता है ? जिसे 'तू' कहते हैं, वह तो परब्रह्म, चैतन्यमय और आनन्द स्वरूप है। इस प्रकार मैं अद्वैत, आनन्दमात्र, चैतन्य-व्याप्त एक रस हूं, सदा सब कुछ ब्रह्म है, सब केवल ब्रह्म ही है।

जब इस प्रकार से आत्मज्ञान हो जाता है, तब वह आत्मज्ञानी स्वयं ही ब्रह्म हो जाता है और 'न तस्य दुर्लभं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते' (योगतत्वोपनिषत्) अर्थात् 'उस योगी के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।' उसे न कोई

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आसक्ति रहती है और न कुछ कामना ही, यहाँ तक कि उसे मोक्ष की भी कामना शेष नहीं रह जाती।

कुण्डलिनी योग

योग का परम लक्ष्य षट्चक्रों का वेधन कर कुण्डलिनी का सहस्रार में शिव से मिलन है। यह कार्य अत्यन्त कठिन है और वर्षों के अभ्यास से सिद्ध होता है, परन्तु स्वरयोग-साधक के लिए बहुत कठिन नहीं होता है। इस योग का वर्णन करना भी प्रसंग वश आवश्यक समझा गया है।

स्वर-साधना में वायु को अपने अनुकूल बनाकर इडा या पिंगला में चालित किया जाता है। वैसे तो वायु का श्वास-निश्वास निरन्तर चलता ही रहता है, अब यह दूसरी बात है कि वह किस नाड़ी में चलता है? और उस समय वह नाड़ी अपने लिए हितकर है या नहीं? यदि नहीं, तो वायु को उस नाड़ी से हटाकर दूसरी नाड़ी में बदला जाता है, जो कि अभ्यास द्वारा साध्य है।

षट्चक्र वर्णन

वायु को एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में बदलना ही स्वर-परिवर्तन करना है। इससे सिद्ध हुआ कि वायु ही स्वर है। जब तक यह वायु वशीभूत नहीं होता, तब तक कोई भी योग-साधन सफल नहीं हो सकता। वायु वश में है तो चित्त भी वश में समझिये। योगकुण्डल्युपनिषत् में वायु को वश में करने का इस प्रकार निर्देश मिलता है—

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद्द्वावपि विनश्यतः॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्तरः सदाः ।
मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः ।।

चित्त की अस्थिरता के दो कारण हैं—(१) वासना, और (२) वायु। इनमें से एक के नष्ट होने पर दूसरा भी नष्ट होजाता है। इसलिए साधक पहले प्राण को जय करे, इसके लिए मिताहार, आसन और तीसरा शक्तिचालन कर्म करे।

चक्र ६ हैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र। योगचूडामण्युपनिषत् में कहा है—

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते ।।
कामाख्यं तु गुदस्थाने पंकजं तु चतुर्दलम् ।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता ।
तस्यमध्ये महालिंग पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ।।
नाभौ तु मणिवद्बिम्बं यो जानाति स योगवित् ।
तप्तचामोकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् ।।
त्रिकोणं तत्पुरं वह्नेरधोमेढ्रात्प्रतिष्ठतम् ।
समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् ।।

प्रथम चक्र आधार और दूसरा स्वाधिष्ठान है, यह योनि स्थान में दोनों के मध्य में स्थित एवं कामरूप कहलाता है। 'काम' संज्ञक चार दल का जो कमल गुद-स्थान में है, उसके मध्य सिद्धों के द्वारा वन्दित 'काम' नाम की योनि है, जिसके मध्य में पश्चिमाभिमुखी महालिंग स्थित है। नाभि में मणि के समान आकार वाले अर्थात् मणिपूर को जो जानता है, वही योगी है। तप्त स्वर्ण जैसा चमकीला; विद्युत-धारा के समान विस्फुरित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तीन कोण युक्त अग्नि का स्थान मेढ़ के नीचे अवस्थित है वहां समाधि में विश्वतोमुख अनन्त परमज्योति दिखाई देती है।

कुण्डलिनी जागरण

ऊर्ध्वं मेढ्रदधोनाभेः कन्दयोनिःखगाण्डवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणिःद्विसप्ततिः ॥
कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् ।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मारुता सह ।
सूचीवद्गात्रमदाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया ॥
उद्घाटयेत्कबाटं तु यथा कुंचिकया गृहम् ।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥

मेढ़ से ऊपर और नाभि से नीचे वाले कन्द में पक्षी के आकार वाली योनि है, वहीं से बहत्तर हजार नाड़ियां उत्पन्न हुई हैं। कन्द के उर्ध्व भाग में कुण्डलिनी शक्ति आठ कुण्डलों के आकार में व्याप्त है और वह वहीं ब्रह्मद्वार को ढक कर सदा स्थित रहती है। जिस द्वार से पाप-रहित रूप से जाना होता है, उसी द्वार को मुख से ढक कर यह परमेश्वरी सोती रहती है। वह अग्नियोग से जाग्रत् होकर मन और प्राण के सहित सुषुम्ना मार्ग में होकर सुई के समान ऊपर की ओर चढ़ती है। जैसे घर के किवाड़ों को कुंजी से खोलते हैं, वैसे ही योगी कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा मोक्ष के द्वार का भेदन करें।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बद्ध पद्मासनो योगी नमस्कृत्य गुरुं शिवम् ।
नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ।।
द्वाराणां नव सन्निरुध्य मरुतं बद्ध्वा दृढां धारणाम् ।
नीत्वा कालमपानवह्निसहितं शक्त्या समं चालितम् ।।
आत्मध्यानयुतस्त्वनेन विधिना विन्यस्य मूर्ध्निस्थिरम् ।
यावत्तिष्ठति तावदेव महतां संगो न संस्तूयते ।।
प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धन पावकः ।
भवोदधि महासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ।।

बद्ध पद्मासन लगा कर बैठे और शिव रूप गुरु को नमस्कार करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखता हुआ प्राणायाम का अभ्यास करे। नव द्वारों को रोक कर वायु का निरोध करे तथा दृढ़ता-पूर्वक शक्ति चालन करके अपान वायु और अग्नि के सहित कुण्डलिनी को (षट्चक्र वेधन करता हुआ) ऊपर ले जाय और आत्मध्यान पूर्वक उसे मस्तक में स्थित करे। जब तक वह स्थिर रहे तब तक श्रेष्ठ समझना चाहिए। क्योंकि ऐसा प्राणायाम पाप रूपी ईंधन के लिए अग्नि स्वरूप है और संसार सागर से पार होने के लिए सेतु के समान कहा गया है।

योग के प्रमुख भेद और अवस्थाएँ

योगवेत्ताओं ने योग के अनेक भेदों में से चार को अति प्रमुख माना है। योगतत्वोपनिषत् के अनुसार—

योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः ।
मन्त्रयोगोलयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः ।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयः स्मृतः ।
निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता ।।

हे ब्रह्मन् ! व्यवहार की दृष्टि से तो योग के अनेक भेद हैं, परन्तु (उन सब में प्रमुख) मन्त्रयोग, लययोग, हठ योग और राजयोग श्रेष्ठ हैं । इसी प्रकार योग की चार अवस्थाएँ सर्वत्र कही जाती हैं—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति ।

मन्त्रयोग का विवेचन इस प्रकार किया गया है—

मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत् ।
क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादि गुणान्वितम् ।।
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ।।

जो मात्रामय जप बारह सौ की संख्या में करता है, वह क्रम से अणिमादि गुणों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, परन्तु इस प्रकार के योग को अल्पबुद्धि वाले और अधम श्रेणी के साधक करते हैं ।

योगतत्वोपनिषत् में ही लययोग आदि के लक्षण वह बताये गये हैं—

लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तिता ।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम् ।।
स एव लययोगः स्याद्धठयोगमतः शृणु ।
यमश्च नियमश्चैव ह्यासनं प्राणसंयमः ।।
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानं भ्रूमध्ये हरिम् ।
समाधिः समताऽवस्था साष्टांगो योग उच्यते ।।

लय योग का अर्थ करोड़ों बार चित्त का लय होना है अर्थात् चलते, बैठते, सोते और भोजन करते में निष्फल परमात्मा के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ध्यान में नितान्त मग्न होजाय, वह लययोग है। अब हठयोग सुनो—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, भौंहों के मध्य भगवान् श्रीहरि (ब्रह्म) का ध्यान और समाधि की समान अवस्था यह अष्टाँग योग कहलाता है।

यमादि का लक्षण

शास्त्रों में योग के आठ अंगों के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है—

लघ्वाहारो यमष्वेको मुख्यो भवति नेतरः।
अहिंसा नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन॥
सिद्धं पद्मं तथा सिहं भद्रं चेति चतुष्टयम्।
ऋजुकायः प्राञ्जलिश्च प्रणमेदिष्टदेवताम्॥
ततो दक्षिणहस्तस्य अंगुष्ठेनैव पिंगलाम्।
निरुध्य पूरयेद्वायुमिडया तु शनैः शनैः॥
यथाशक्त्यविरोधेन ततः कुर्याच्च कुम्भकम्।
पुनस्त्यजेत्पिंगलया शनैरेव न वेगतः॥
पुनः पिंगलयाऽऽपूर्य पूरयेदिडया शनैः।
धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदुदरं शनैः।
यथा त्यजेत्तयाऽऽपूर्य धारयेदविरोधतः॥

हे चतुरानन! यमों में एक लघु आहार ही मुख्य यम है, नियमों में एक अहिंसा ही मुख्य नियम है। आसन चार (मुख्य) हैं—सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन। शरीर को सीधा रखे, हाथ जोड़कर इष्टदेव को प्रणाम करे, फिर दाँये हाथ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के अँगूठे से पिङ्गला नाड़ी को दबाकर वायु को धीरे-धीरे भीतर खींचे और यथाशक्ति रोकता हुआ कुम्भक करे। फिर पिङ्गला द्वारा धीरे-धीरे निकाल दे, वेगपूर्वक न निकाले। तत्पश्चात् पिङ्गला से यथाशक्ति वायु को भरकर धारण करे और इडा के द्वारा धीरे-धीरे निकाल दे। इसी प्रकार जिधर से निकाले, उधर से ही पुनः भरे और धारण कर निकालता रहे।

इस प्रकार अस्सी कुम्भक तक का अभ्यास कर ले। 'एव' मासत्रयाभ्यासान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत्' अर्थात् तीन मास तक ऐसा अभ्यास करने से नाड़ी शोधन होजाता है। 'ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायु धारणे' अर्थात् 'इस अभ्यास से वायु को इच्छानुसार धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती।' इससे 'कुम्भक' सिद्ध होजाता है, तब रेचक, पूर्वक का त्याग कर दिया जाता है।

प्रत्याहार का वर्णन

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार के वर्णन में इन्द्रियों के विषयों से विमुख होने को प्रत्याहार माना है–

स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

अर्थात् 'अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाना ही प्रत्याहार है।' इसमें इन्द्रियाँ बाह्य विषयों से विमुख होकर, विरक्त हुए चित्त के अनुरूप कार्य करने लगती हैं। इस प्रकार इन्द्रियों की परमावश्यता होती है।

धारणा का वर्णन

योगदर्शन के विभूति पाद में धारणा का लक्षण इस प्रकार बताया है—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

अर्थात् 'वृत्ति मात्र से चित्त को किसी एक देश में स्थिर करना धारणा है।' देशबन्ध' पद का अभिप्राय है चित्तवृत्ति को सभी बाह्यविषयों से हटाकर शरीर के नाभिचक्र, हृदय कमल, नासाग्र, भृकुटियों के मध्य या जिह्वाग्र आदि में से किसी भी एक स्थान पर दृढ़ रूप से ठहरा लेना, जिससे कि वह चलायमान न हो सके।

ध्यान का वर्णन

योग के साधनों में ध्यान का सातवाँ स्थान है। विद्वानों का कथन है कि भौंहों के मध्य भाग में भगवान् का निवास है, वहीं ध्यान करना चाहिए। कुछ लोग नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करते हुए ध्यान करने को श्रेष्ठ मानते हैं और कुछ के विचार में हृदय के मध्य परब्रह्म का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है।

महर्षि पतंजलि ने बहुत संक्षेप में ध्यान का जो स्वरूप बतलाया है, वह युक्तयुक्त है। महर्षि अपने योगदर्शन में कहते हैं—'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' अर्थात् 'जहाँ चित्त को ठहराया जाय, वहीं वृत्ति का एक जैसा रहना ध्यान है।'

जिस देश विशेष में धारणा के द्वारा चित्त को लगा दिया जाय, उसी में ध्यान करते समय चित्तवृत्ति का निरन्तर समान प्रवाह से उसी में स्थिर रहना और किसी अन्य वृत्ति का मध्य मे न आना ही ध्यान है। अर्थात् चित्तवृत्ति का ध्येय में नितान्त निमग्न होजाना ही ध्यान है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समाधि का वर्णन

योगदर्शन के विभूतिपाद के अनुसार 'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।' अर्थात् जब ध्येयमात्र की ही प्रतीति होने लगे और चित्त का अपना स्वरूप शून्य हो जाय, वही समाधि है ।'

चित्त की उस वृत्ति को ध्यान कहते हैं जिससे ध्येय में चित्त की तन्मयता हो जाय और ध्यान का अभ्यास करते-करते जब चित्त ध्येय के आकार का होजाय और अपने रूप का भी अभाव होजाय, तब वह ध्यान ही समाधि कहलाता है । क्योंकि इस अवस्था में केवल ध्येय मात्र ही भासित होता है, अन्य कुछ भी भासित नहीं होता ।

समाधि के दो भेद माने जाते हैं—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात सम्प्रज्ञात समाधि में ससार का बीज विषय ध्येयाकर वृत्ति के रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसे सबीज समाधि भी कहते हैं । असम्प्रज्ञाय समाधि में ध्येयाकार वृत्ति भो शष नहीं रहती, इसलिए यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है । अन्नपूर्णोपनिषत् में कहा है कि—

निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेतवर्जिता ।
ब्रह्मन् समाधि शब्देन परिपूर्णा मनोगतिः ॥

हे ब्रह्मन् ! निश्चय युक्त, इच्छित वस्तुओं से विरक्त, हेय-उपादेय से वर्जित, मन की परिपूर्ण स्थिति ही 'समाधि' शब्द से कही जाती है ।

योगाभ्यास में विघ्नों की उपस्थिति

योग-साधन में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, जिनमें आलस्य, प्रमाद, संशय व्यथा अश्रद्धा, भ्रान्तिदर्शन अनवस्थित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चित्तता, दौर्मनस्कता, लोलुपता और दुःख। तेजोबिन्दूपनिषत् में कहा है—

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात्।
अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसाम् ॥
लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता।
एवं हि विघ्नं बाहुल्यं त्याज्य ब्रह्मविशारदैः ॥

जब समाधि होने लगती है तब बलपूर्वक अनेक विघ्न उपस्थित होते है, जिनमें अनुसंधान-रहितता, आलस्य, भोगों की लालसा, लय, तमस्, विक्षेप, तेज, पसीना और ऐसे ही बहुत से विघ्न आते हैं, जिन्हें ब्रह्मज्ञानीजन त्याग देते हैं।

अणिमादि सिद्धियों के रूप में विघ्न

यद्यपि अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ योग-बल से उन्हीं साधक को प्राप्त होती हैं, जिनके अभ्यास में अत्यन्त प्रखरता आगई हो। योगाभ्यास की दृढ़ता के बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। परन्तु सभी सिद्धियां साधना में विघ्न रूप ही सिद्धों होती हैं। योगसुधाकर का कथन है—'यदि तन्नापेक्षास्यात् तदा मोक्षाद् भ्रष्टः कथं कृतकृत्यताभियात्' अर्थात् 'यदि इन सिद्धियों की अपेक्षा रहे तो योगी मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होजाता है। तब वह कृतकृत्य कैसे हो सकता है ?

महर्षि पतंजलि के अनुसार—'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः' अर्थात् 'ये सिद्धियाँ समाधि में विघ्न स्वरूप हैं, व्युत्थान अर्थात् जाग्रत अवस्था में सिद्धियाँ है।

इस प्रकार इन विघ्न रूपी सिद्धियों की ओर ध्यान भी न दे। यदि यह स्वतः प्राप्त होगई हों तो इनसे लाभ न उठावे,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समाधि का वर्णन

योगदर्शन के विभूतिपाद के अनुसार 'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।' अर्थात् जब ध्येयमात्र की ही प्रतीति होने लगे और चित्त का अपना स्वरूप शून्य हो जाय, वही समाधि है।'

चित्त की उस वृत्ति को ध्यान कहते हैं जिससे ध्येय में चित्त की तन्मयता हो जाय और ध्यान का अभ्यास करते-करते जब चित्त ध्येय के आकार का होजाय और अपने रूप का भी अभाव होजाय, तब वह ध्यान ही समाधि कहलाता है। क्योंकि इस अवस्था में केवल ध्येय मात्र ही भासित होता है, अन्य कुछ भी भासित नहीं होता।

समाधि के दो भेद माने जाते हैं—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात सम्प्रज्ञात समाधि में ससार का बीज विषय ध्येयाकर वृत्ति के रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसे सबीज समाधि भी कहते हैं। असम्प्रज्ञाय समाधि में ध्येयाकार वृत्ति भो शष नहीं रहती, इसलिए यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है। अन्नपूर्णोपनिषत् में कहा है कि—

निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेतवर्जिता।
ब्रह्मन् समाधि शब्देन परिपूर्णा मनोगतिः॥

हे ब्रह्मन्! निश्चय युक्त, इच्छित वस्तुओं से विरक्त, हेय-उपादेय से वर्जित, मन की परिपूर्ण स्थिति ही 'समाधि' शब्द से कही जाती है।

योगाभ्यास में विघ्नों की उपस्थिति

योग-साधन में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, जिनमें आलस्य, प्रमाद, संशय व्यथा अश्रद्धा, भ्रान्तिदर्शन अनवस्थित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चित्तता, दौर्मनस्कता, लोलुपता और दुःख। तेजोबिन्दूपनिषत् में कहा है—

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात्।
अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसाम् ॥
लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता।
एवं हि विघ्नं बाहुल्यं त्याज्य ब्रह्मविशारदैः ॥

जब समाधि होने लगती है तब बलपूर्वक अनेक विघ्न उपस्थित होते है, जिनमें अनुसंधान-रहितता, आलस्य, भोगों की लालसा, लय, तमस्, विक्षेप, तेज, पसीना और ऐसे ही बहुत से विघ्न आते हैं, जिन्हें ब्रह्मज्ञानीजन त्याग देते हैं।

अणिमादि सिद्धियों के रूप में विघ्न

यद्यपि अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ योग-बल से उन्हीं साधक को प्राप्त होती हैं, जिनके अभ्यास में अत्यन्त प्रखरता आगई हो। योगाभ्यास की दृढ़ता के बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। परन्तु सभी सिद्धियां साधना में विघ्न रूप ही सिद्धों होती हैं। योगसुधाकर का कथन है—'यदि तन्नापेक्षास्यात् तदा मोक्षाद् भ्रष्टः कथं कृतकृत्यताभियात्' अर्थात् 'यदि इन सिद्धियों की अपेक्षा रहे तो योगी मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होजाता है। तब वह कृतकृत्य कैसे हो सकता है?

महर्षि पतंजलि के अनुसार—'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः' अर्थात् 'ये सिद्धियाँ समाधि में विघ्न स्वरूप हैं, व्युत्थान अर्थात् जाग्रत अवस्था में सिद्धियाँ है।

इस प्रकार इन विघ्न रूपी सिद्धियों की ओर ध्यान भी न दे। यदि यह स्वतः प्राप्त होगई हों तो इनसे लाभ न उठावे,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इनके प्रदर्शन द्वारा किसी को चमत्कृत न करे। क्योंकि यह सिद्धियाँ साधक के मन को भटकाने या प्रलोभन में डालने वाली हैं। इसलिए इन सिद्धियों से भी वैराग्य होना चाहिए। क्योंकि 'तद्वैराग्यादपिदोषबीजक्षये कैवल्यम्' (योगदर्शन ३।५०) अर्थात् 'इनके वैराग्य से दोष के बीजों का नाश होकर कैवल्य की प्राप्ति होती है।' इसलिए योगाभ्यासी को इनका त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है, अन्यथा इन्हीं में आकर्षित हुआ साधक विश्व प्रपंच की मोह-ममता में फँसकर अपनी सम्पूर्ण साधना खो बैठता है।

अजपा गायत्री

जीव रूप से वायु का हजारों नाड़ियों में निवास है. प्राण और अपान के वश में पड़ कर जीव ऊपर-नीचे आता जाता रहता है। ध्यानविन्दूपनिषत् में कहा है—

वाम दक्षिणमार्गेण चंचलत्वान्न दृश्यते।
आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्चलति कन्दुकः॥
प्राणापानसमाक्षिप्तस्तद्वज्जीवो न विश्रमेत्।
अपानात्कर्षति प्राणोऽपानः प्राणाच्च कर्षति॥
खगरज्जुवदित्येतद्यो जानाति स योगवित्।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः॥

वह जीव कभी बांये, कभी दाँये मार्ग से चलता है परंतु चंचल होने के कारण दिखाई नहीं देता। जैसे हाथों द्वारा फेंकी हुई गेंद दौड़ती है, वैसे ही प्राण-अपान वायुओं द्वारा फेंका जाने से जीव भी कही विश्राम को प्राप्त नहीं होता। जैसे रस्सी में बंधा हुआ पक्षी खींच लिया जाता है, वैसे ही अपान प्राण को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

खींचता है और प्राण अपान को, जो इस रहस्य को जानता है वही योगी है। यह प्राण 'हकार' ध्वनि के द्वारा बाहर जाता है और 'सकार' ध्वनि के द्वारा भीतर आता है।

हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
शतानि षड् दिवारात्र सहस्राण्येकविंशतिः॥
एतत्संख्याऽन्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा॥
अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते।
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः॥
अनया सदृश पुण्यं न भूतं व भविष्यति।
येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्॥

इस प्रकार जीव सदैव 'हंस-हंस' मन्त्र का जप करता रहता है और एक-दिन रात्रि में इस जप की संख्या इक्कीस हजार छः सौ होती है। जीव के द्वारा इस संख्या में किये जाने वाले जप को 'अजपा' गायत्री कहते हैं, जो कि योगियों के लिए मोक्ष देने वाली है। इस अजपा गायत्री के संकल्प मात्र से मनुष्य पापों से छूट जाता है। इसके समान न तो कोई विद्या है, न कोई जप है और न कोई पुण्य ही है, न कभी हुआ और न कभी होगा। इसके द्वारा बिना किसी बाधा के साधक निरामय ब्रह्मस्थान तक जा पहुँचता है।

शरीर में आत्म-दर्शन

जो साधक विश्व-प्रपंच के सभी भावों से विरक्त हो जाते हैं, वे अपने शरीर में ही आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लेने में पूर्ण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तथा समर्थ सिद्ध होते हैं। अन्न पूर्णोपनिषत् में इस पर मननीय प्रकाश डाला गया है—

स्वशरीरे स्वयं ज्योतिः स्वरूपं सर्वसाक्षिणम् ।
क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययाऽऽवृताः ॥
बाल्येनैव हि तिष्ठासेन्निर्विद्य ब्रह्मवेदनम् ।
ब्रह्मविद्यां च वाल्यं च निर्विदा मुनिरात्मवान्॥
अन्तर्लीन समारम्भ शुभाशुभ महांकुरम् ।
संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरं विद्धि भौतिकम् ॥
भावाभाव दशाकोशं दुःखरत्न समुद्गकम् ।
बीजमस्य शरीरस्थ चित्तमाशावशानुगम् ॥

जिनके रागादि दोषों का नाश होगया है, वे अपने शरीर में स्वयं ज्योतिस्वरूप सर्वसाक्षी को देखते हैं। ब्रह्मज्ञान का अनुभव करके बालकपन की स्थिति में ही रहे, क्योंकि ब्रह्मविद्या और बालकपन का अनुभव होने पर ही मुनि आत्मवेत्ता होता है इस भौतिक शरीर में ही सब समारम्भ भरे हैं और शुभ-अशुभ का अंकुर भी बड़ा है तथा ससार रूपो बेल का बीज भी है। उसको जानना आवश्यक है। इस शरीर का बीज चित्त है, क्योंकि वह भाव-अभाव की दशाओं का कोश और दुःख रूपी दशाओं का भंडार है तथा वह आशा वश में होने वालों का ही अनुसरण करता है।

चित्त वृक्ष के दो बीज

चित्त ही वह वृक्ष है जो विविध कामनाओं के रूप में फल उत्पन्न करता है। उस वृक्ष के दो बीज माने गए हैं—(१)प्राणों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

का परिस्पद, और (२) दृढ़भावना जब नाड़ियों का स्पर्श करने के लिए प्राणवायु तत्पर होकर चेष्टा करने लगता है तभी संवेदन युक्त चित्त की उत्पत्ति हो जाती है। अन्नपूर्णोपनिषत् में ही कहा है—

सा हि सर्वगता संवित् प्राणस्पन्देन बोध्यते।
संवित्संरोधनं श्रेयः प्राणादिस्पन्दनं वरम्॥
योगिनश्चित्तशान्त्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम्।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैः प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः॥
चित्तोपशान्तिफलदं परमं विद्धि कारणम्।
सुखदं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसंरोधनं विदुः॥

यह संवेदन सब में होता है और उसे प्राण की चेष्टा ही जगाती है, इसलिए प्राणादि की चेष्टा न होना ही श्रेष्ठ है। यही संवेदन को रोकने वाला श्रेष्ठ कल्याण है। योगीजन चित्त की शान्ति के लिए ही प्राणायाम, ध्यान और युक्तियों से कल्पित प्रयोगों के द्वारा प्राण की चेष्टा को रोका करते हैं। इसलिए प्राण की चेष्टा को रोकना ही चित्त की शान्ति रूपी फल का देने वाला श्रेष्ठ कारण है। यह समझने वाले योगी ही संवेदन का सुख देने वाला स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं।

चित्त के नाश से ही मोक्ष की प्राप्ति

चित्त ही सब प्रकार की मोह-ममता, प्रलोभन, आकर्षण आदि वासनाओं का कारण है, इसलिए चित्त का निरोध ही मोक्ष-प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है। इस विषय में उपनिषदों का निर्देश है कि—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्वज्ञानं मनोनाशो वासना क्षय एव च ।
मिथ:कारणतां गत्वा दु:साधानि स्थितान्यत: ॥
भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा व्रतमेतत् समाचर ।
वासनाक्षतं विज्ञानमनोनाशा महामते ।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मता: ॥
त्रिभिरेभि: समभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढा: ।
नि:शेषमेव त्रुटयन्ति बिसच्छेदाद्गुणा इव ॥
वासना संपरित्याग समं प्राणनिरोधनम् ।
विदुस्तत्वविदस्तस्मात्तदप्येवं समाहरेत् ॥

मन का नाश और वासना का क्षय ही तत्वज्ञान है और परस्पर कारण रूप होने के कारण यह दु:साध्य हैं। इसलिए भोगों की इच्छा को दूर से ही त्याग कर इन तीनों का ही ठीक प्रकार से आचरण करे। हे महामते ! वासना का क्षय, विज्ञान और मन का नाश, इन तीनों का चिरकाल तक अभ्यास करने से तीनों एक ही समय में फलदायक होते हैं। जैसे कमल की ठंडी काटने से उसके सब तन्तु भी कट जाते हैं, वैसे ही इन तीनों का भले प्रकार अभ्यास करने से हृदय को दृढ़ गाँठ पूर्णरूप से कट जाती हैं। प्राण की चेष्टा रोकने को भी तत्वज्ञानी जन वासना के त्याग के समान ही मानते हैं, इसलिए उसका अभ्यास भी इसी प्रकार से करे।

रुद्राक्ष धारण से सर्व श्रेय सिद्धि

स्वरयोग के साधक को शरीर में भस्म रमाने, रुद्राक्ष धारण करने और शिवजी का ध्यान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसलिए यहाँ रुद्राक्ष के स्वरूप और महिमा पर प्रकाश डालना आवश्यक है। रुद्राक्षजाबालोपनिषत् में कहा है—

धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।
बदरीफल मात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः ।
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा मयोच्यते ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया: वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ।
वृक्षा जाताः पृथिव्यांतु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः॥
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्रः उदाहृताः॥
ब्राह्मणी विभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत्
पीतान् वैश्यस्तु विभृयात् कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥

आँवले के बराबर का रुद्राक्ष श्रेष्ठ बताया गया है। विद्वानों ने बेर के समान को मध्यम और चने के बराबर वाले को अधम कहा है। अब मैं उसकी प्रक्रिया कहता हूँ। शिवजी की आज्ञा से उस शुभ रुद्राक्ष के वृक्ष ब्राह्मण, वैश्य और शद्र के अनुरूप से उस शुभ रुद्राक्ष के वृक्ष ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के अनुरूप हुए। श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मण, लाल, रुद्राक्ष, क्षत्रिय, पीले रुद्राक्ष वैश्य और काले रुद्राक्ष शूद्र कहलाते हैं, इसलिए ब्राह्मण को श्वेत क्षत्रिय को लाल, वैश्य को पीले और शूद्र को काले रुद्राक्ष धारण करने चाहिए।

त्याज्य और ग्राह्य रुद्राक्ष

समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः ।
कृमिदष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

व्रणयुक्तमयुक्तं च षड् रुद्राक्षाणि वर्जयेत् ।
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ॥
यत्तु पौरुष यत्नेनं कृतं तन्मध्यमं भवेत् ।
समान् स्निग्धान् दृढान् स्थूलान् क्षौमसूत्रेण धारयेत्॥
सर्वगात्रेण सौम्येन सामान्यानि विचक्षणः ।
निकर्षे हेमरेखाभा यस्य रेखा प्रदृश्यते ॥
तदक्षमुत्तमं विद्यात्तद्धार्यं शिवपूजकैः ।
शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिशतं शिरसा वहेत् ॥

समान (गोल), चिकने, दृढ़, बड़े (मोटे) और काँटों से युक्त शुभ होते हैं । कृमियों द्वारा खाये हुए, चटखे या टूटे हुए, काँटों से रहित, व्रणयुक्त और देखने में ठीक न लगने वाले यह छः प्रकार के रुद्राक्ष त्याज्य हैं। उत्तम रुद्राक्ष वह है जिसमें स्वतः ही छेद हो । जिसमें छेद करना पड़े वह मध्यय होता है । इसलिए जो रुद्राक्ष समान, चिकने, दृढ़ और स्थूल हों, उन्हें रेशमी धागे में पिरो कर धारण करे । यह रुद्राक्ष सब प्रकार से सौम्य, सुन्दर और समान होने चाहिए । जिसकी रेखा स्वर्णिम प्रतीत हो उसे उत्तम समझ कर शिवभक्तों को धारण करना चाहिए । चोटी में एक और शिर में तीस रुद्राक्षों को धारण करे ।

रुद्राक्ष धारण में संख्या-निर्देश

षट्त्रिंशतं गले दध्याद्बाह्वोः षोडशषोडश ।
मणिवन्धे द्वादशैव स्कन्धे पंचशतं वहेत् ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अष्टोत्तरशतैर्मालामुपवीतं प्रकल्पयेत् ।
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पंचक तथा ॥
राणां सप्तकं वाऽपि विभृयात् कण्ठदेशतः ।
मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेऽपि वा ॥
केयूरकटके सूत्रं कुक्षिबन्धे विशेषतः ।
सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरा ॥
त्रिशतं त्वधमं पंचशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्त्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत् ॥

कण्ठ में छत्तीस, दोनों भुजाओं में सोलह सोलह, मणिबन्ध में बारह और कन्धे में पन्द्रह रुद्राक्ष धारण करे। एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला बना कर उपवीत के समान गले में धारण करनी चाहिए। दो लड़ी, तीन लड़ी, पाँच लड़ी या सात लड़ी कण्ठदेश में धारण करे। मुकुट, कुण्डल, कान की वाली आदि के रूप में भी रुद्राक्ष धारण करना चाहिए, बाजूबन्द और कुक्षि-बन्ध (कौंधनी) के रूप में सूत्र में पिरोये हुए रुद्राक्षों को विशेष रूप से सोते-जागते अर्थात् सब समय धारण करे। तीन सौ रुद्राक्षों का धारण अधम, पाँच सौ का मध्यम और एक हजार का उत्तम कहा गया है। इस भेद को समझ कर रुद्राक्षों को धारण करे।

रुद्राक्षों के अनेक प्रकार

रुद्राक्षों के अनेक प्रकार होते हैं। उनमें एक मुख से लेकर अनेकों मुख वाले रुद्राक्ष मिलते हैं, उनका पृथक्-पृथक् फल होता है, उसका वर्णन इस प्रकार है—

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रुद्राक्षों के मुख और उनकी महिमा

एक वक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् ।
तद्धारेणात् परतत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥
द्विववक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥
त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रय स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यदा ॥
चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्र स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्चतुर्वक्त्रः प्रीयते तस्य नित्यदा ॥
पंचवक्त्रं तु रुद्राक्षं पंचब्रह्म स्वरूपकम् ।
पंचवक्त्र स्वयं ब्रह्मा पुंहत्यां च व्यपोपति ॥

एक मुख का रुद्राक्ष परतत्त्व का स्वरूप है, उसके धारण से विजितेन्द्रिय पुरुष परतत्त्व में ही लीन हो जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! दो मुख का रुद्राक्ष अर्द्धनारीश्वर युक्त है, इसको धारण करने वाला साधक अर्द्धनारीश्वर शिव की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। तीन मुख का रुद्राक्ष तीनों अग्नियों का स्वरूप है, उसके धारण से अग्निदेव की प्रसन्नता सदा प्राप्त होती रहती है, चार मुख का रुद्राक्ष चतुर्मुख (ब्रह्मा) का स्वरूप है, उसके धारण से चतुरानन भगवान् की कृपा सदा बनी रहती है। पाँच मुख का रुद्राक्ष पंचमुखी (शिव) का स्वरूप है, उसके धारण से स्वयं पंचानन ब्रह्म पुरुष की हत्या को दूर कर देते हैं।

षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम् ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सप्तवक्त्रं तु रुद्राक्षं सप्तमात्रधिदैवतम् ।
मद्धारणान्महाश्रीःस्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥
अष्टवक्त्रं तु रुद्राक्षमष्टमात्रधिदैवतम् ।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः॥
नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम् ।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नवशक्तयः ॥
दशवक्त्रं तु रुद्राक्षं यमदैवमुदाहृतम् ।
दर्शात् प्रशान्तिजनकं धारणान्नात्र संशयः ॥

छः मुख वाले रुद्राक्ष के अधिदेवता भगवान् कार्तिकेय हैं, इसके धारण से महालक्ष्मी की प्रसन्नता और श्रेष्ठ आरोग्य की प्राप्ति होती है । सात मुख के रुद्राक्ष की सात मा ृकाएँ (ब्राह्मी आदि) अधिष्ठात्री देवता होती हैं, इसके धारण से भी महालक्ष्मी की कृपा और श्रेष्ठ आरोग्य की उपलब्धि होती है । आठ मुख के रुद्राक्ष की अधिष्ठात्री देवी आठ मातृकाएँ मानी जाती हैं, इसके धारण से सत्यवादियों को उनकी प्रीति प्राप्त होती है, नौ मुख के रुद्राक्ष के अधिदेवता नौ शक्तियाँ हैं, इसलिए इसके धारणमात्र से नौ शक्तियाँ प्रसन्न रहती हैं । दश मुख के रुद्राक्ष के देवता यम कहे जाते हैं, इसलिए उसके देखने से और धारण करने से अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है ।

एकादशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम् ।
तदिदं दैवतं प्राहुः सदा सौभाग्यवर्धनम् ॥
रुद्राक्षं द्वादश मुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यरूपं च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रुद्राक्षों के मुख और उनकी महिमा

एक वक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् ।
तद्धारेणात् परतत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥
द्विवक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥
त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रय स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यदा ॥
चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्र स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्चतुर्वक्त्रः प्रीयते तस्य नित्यदा ॥
पंचवक्त्रं तु रुद्राक्षं पंचब्रह्म स्वरूपकम् ।
पंचवक्त्र स्वयं ब्रह्मा पुंहत्यां च व्यपोपति ॥

एक मुख का रुद्राक्ष परतत्त्व का स्वरूप है, उसके धारण से विजितेन्द्रिय पुरुष परतत्त्व में ही लीन हो जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! दो मुख का रुद्राक्ष अर्द्धनारीश्वर युक्त है, इसको धारण करने वाला साधक अर्द्धनारीश्वर शिव की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। तीन मुख का रुद्राक्ष तीनों अग्नियों का स्वरूप है, उसके धारण से अग्निदेव की प्रसन्नता सदा प्राप्त होती रहती है, चार मुख का रुद्राक्ष चतुर्मुख (ब्रह्मा) का स्वरूप है, उसके धारण से चतुरानन भगवान् की कृपा सदा बनी रहती है। पाँच मुख का रुद्राक्ष पंचमुखी (शिव) का स्वरूप है, उसके धारण से स्वयं पंचानन ब्रह्म पुरुष की हत्या को दूर कर देते हैं।

षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम् ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सप्तवक्त्रं तु रुद्राक्षं सप्तमात्रधिदैवतम् ।
मद्धारणान्महाश्रीःस्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥
अष्टवक्त्रं तु रुद्राक्षमष्टमात्रधिदैवतम् ।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः॥
नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम् ।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नवशक्तयः ॥
दशवक्त्रं तु रुद्राक्षं यमदैवमुदाहृतम् ।
दर्शात् प्रशान्तिजनकं धारणान्नात्र संशयः ॥

छः मुख वाले रुद्राक्ष के अधिदेवता भगवान् कार्तिकेय हैं, इसके धारण से महालक्ष्मी की प्रसन्नता और श्रेष्ठ आरोग्य की प्राप्ति होती है। सात मुख के रुद्राक्ष की सात मातृकाएँ (ब्राह्मी आदि) अधिष्ठात्री देवता होती हैं, इसके धारण से भी महालक्ष्मी की कृपा और श्रेष्ठ आरोग्य की उपलब्धि होती है। आठ मुख के रुद्राक्ष की अधिष्ठात्री देवी आठ मातृकाएँ मानी जाती हैं, इसके धारण से सत्यवादियों को उनकी प्रीति प्राप्त होती है, नौ मुख के रुद्राक्ष के अधिदेवता नौ शक्तियाँ हैं, इसलिए इसके धारणमात्र से नौ शक्तियाँ प्रसन्न रहती हैं। दश मुख के रुद्राक्ष के देवता यम कहे जाते हैं, इसलिए उसके देखने से और धारण करने से अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है।

एकादशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम् ।
तदिदं दैवतं प्राहुः सदा सौभाग्यवर्धनम् ॥
रुद्राक्षं द्वादश मुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यरूपं च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्रयोदशमुखं चाक्षं कामदं सिद्धिदं शुभम् ।
तस्य धारण मात्रेण कामदेवः प्रसीदति ।।
चतुर्दशमुखं चाक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदाऽऽरोग्यमाप्नुयात् ।।
ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च ।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

ग्यारह मुख के रुद्राक्ष के अधिदेवता एकादश रुद्र हैं, यह देवता सदैव सौभाग्यवर्द्धन करते रहते हैं। बारह मुख का रुद्राक्ष महा-विष्णु स्वरूप होता है, यह द्वादश आदित्य स्वरूप भी है, इसे धारण में तत्पर रहे। तेरह मुख का रुद्राक्ष सभी कामनाओं और सिद्धियों का देने वाला है, इसके धारण मात्र से कामदेव प्रसन्न होजाते हैं। चौदह मुख का रुद्राक्ष भगवान् रुद्र के नेत्र से उत्पन्न हुआ है, यह सभी रोगों का हरण करने वाला और सदा आरोग्य प्रद है। ग्रहण-काल में, दिवस-रात्रि के समान होने वाले समय में, अयन परिवर्तन के समय, अमावस या पौर्णमासी के दिन या जब दिवस पूर्ण होजाय, तब रुद्राक्ष धारण करने से सभी पापों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

रुद्राक्ष-धारण का फल

'रुद्राक्ष' शब्द के उच्चारण मात्र से गोदान का फल मिलता है। वही भस्म ज्योति रुद्राक्ष है, जिसे हाथ से स्पर्श कर धारण करने मात्र से दो हजार गौओं के दान का फल प्राप्त हो जाता है। इन रुद्राक्षों का धारण दोनों कानों में करे तो ग्यारह हजार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गौओं के दान का फल होता है तथा साधक एकादश रुद्रों के स्व-रूप का ही हो जाता है।

तद्रुद्राक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच ।। (रु.जा उ)

अर्थात्—उस रुद्राक्ष के शिर पर धारण करने से करोड़ गौओं के दान का फल प्राप्त होता है। इन सब स्थानों में कानों में (रुद्राक्ष) धारण का फल तो कह ही नहीं सकते अर्थात् कानों में रुद्राक्ष धारण का फल तो इतना अधिक है, जो जिह्वा से कहा ही नहीं जा सकता।

योगियों के अरिष्ट चिह्नों का वर्णन

शास्त्रकारों ने स्वर-साधकों और योगाभ्यासियों के लिए भी भविष्य-ज्ञान विषयक विविध संकेत दिये हैं, जिनके द्वारा उनकी आयु का काल जाना जा सकता है, यथा—

तिस्रश्च नाडिकास्तासु स यावन्तश्चरत्ययम् ।
शंखिनीविवरे याम्ये प्राणः प्राणभृतां सताम् ।।
तावन्तं च पुनः कालं सौम्ये चरति संततम् ।
इत्थं क्रमेण चरता वायुना वायुजिन्नरः ।।
अहश्च रात्रिं पक्षं च मासं मत्वायनादिकम् ।
अन्तर्मुखो विजानीयात् कालभेदं समाहितः ।।
अंगुष्ठादिस्वावयवास्फुरणादर्शनैरपि ।
अरिष्टैर्जीवितस्यापि जानीयात्क्षयमात्मनः ।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तीन नाड़ियाँ हैं, प्राणायाम-परायण साधकों का स्वर दाँये-बाँये नासापुटों से समान काल तक चलता रहता है और इस प्रकार क्रम से प्राणवायु चलने वाला साधक प्राणजित् होजाता है। तब दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन आदि के कालभेद को अन्तर्मुख होकर जानने लगता है। अँगूठा आदि अपने अवयवों में स्फुरण बन्द होने पर अपने जीवन का शीघ्र ही अन्त होना समझे।

पादांगुष्ठे करांगुष्ठे स्फुरणं यस्य नश्यति ।
तस्य संवत्सरादूर्ध्वं जीवितस्य क्षयो भवेत् ॥
मणिबन्धे तथा गुल्फे स्फुरण यस्य नश्यति ।
षण्मासावधिरेतस्य जीवितस्य स्थितिर्भवेत् ॥
कूर्परास्फुरणं यस्य तस्य त्रैमासिकी स्थितिः।
कक्षोमेहनपार्श्वे च स्फुरणानुलम्भने ।
मासावधिर्जीवितं तस्य तदर्थं सत्वदर्शने ॥

जिसके पाँव-हाथ के अंगूठों में स्फुरण न हो उसका जीवन एक वर्ष के पश्चात् समाप्त होजाता है। मणिबन्ध और टखनों का स्फुरण बन्द होने पर छः मास का ही जीवन शेष रहता है। कुहनियों का स्फुरण बन्द हो जाय वह तीन मास ही जीवित रहता है। कुक्षि या उपस्थ में स्फुरण न हो तो एक मास में और नेत्रों में स्फुरण न हो तो पन्द्रह दिन का ही जीवन समझे।

आश्रिते जठरे द्वारे दिनानि दश जीवितम् ॥
ज्योतिः खद्योतवद्यस्य तदर्धं तस्य जीवितम् ॥
जिह्वाग्रादर्शने त्रीणि दिनानि स्थितिरात्मनः ।
ज्वालाया दर्शने मृत्युर्द्विदिने भवति ध्रुवम् ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एवमादीन्यरिष्टानि दृष्ट्वाऽऽयुःक्षयकारणम् ।
निःश्रेयसाय युञ्जीत जपध्यानपरायणः ॥

जठर-द्वार पर स्फुरण न होने से जीवन की अवधि दस दिन रह जाती है। जुगनू के समान ज्योति होजाय तो पाँच दिन का जीवन शेष रहता है। यदि जिह्वा का दिखाई देना बन्द होजाय तो तीन दिन का ही जीवन समझे। यदि अग्नि की ज्वाला दिखाई न दे तो दो दिन का ही जीवन समझना चाहिए। यह सभी अरिष्ट (अपशकुन) आयु के क्षय के कारण रूप हैं, इन्हें जान कर अपने कल्याणार्थ जप-ध्यानादि में तत्पर होजाय।

आवागमन की निवृत्ति का निर्णय

विश्वरूपस्य देवस्य रूपं यत्किंचिदेव हि ।
स्थवीयः सूक्ष्ममन्यद्वा पश्यन्हृदयपंकजे ॥
ध्यायतो योगिनो यस्तु साक्षादेव प्रकाशते ।
अणिमादिफलं चैव सुखेनैवोपजायते ॥
जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि ।
अहमेव परंब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः ॥
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः ।
ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः ससृति व्रजेत् ॥
एवं विशोध्य तत्वानि योगी निःस्पृह चेतसा ।
निर्वाणपदमाश्रित्य योगी कैवल्यमश्नुते ॥

विश्वरूप देव का जो कुछ भी स्थूल, सूक्ष्म रूप मान कर अपने हृदय-कमल में ध्यान करने वाला साधक उन्हीं जैसे रूप का होजाता है और उसे अणिमादि सिद्धियों का फल सहज में ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मिल जाता है। जीवात्मा-परमात्मा का ज्ञान होजाने पर 'मैं ही ब्रह्म हूं' इस स्थिति रूप समाधि में सभी वृत्तियों का अन्त हो जाता है और इस प्रकार ब्रह्म को प्राप्त करने वाला योगी कभी संसार में नहीं आता। इस प्रकार तत्व का शोधन करने वाला योगी निस्पृह चित्त होकर निर्वाणपद प्राप्त करता हुआ कैवल्य (मोक्ष) में स्थित हो जाता है।

ग्रन्थपाठ का फल और समाप्ति

यइदं प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतपाप नाशयति। मध्याह्नेऽधीयानः षड्जन्मकृत पापं नाशयति, षटसहस्रलक्षगायत्रीजपफलमवाप्नोति, पंक्ति शत सहस्र पावनो भवति शिवसायुज्यमवाप्नोति नं च पुनरावर्तते।

अर्थात्-जो इसे प्रातःकाल पढ़ता है, वह रात्रि में किये पापों को नष्ट कर लेता है, जो सायंकाल में पढ़ता है उसके दिन में हुए पाप नष्ट हो जाते हैं और जो मध्याह्न काल में पढ़ता है उसके छः जन्मों के पाप भी मिट जाते हैं तथा छः हजार लाख गायत्री मन्त्र के जप का फल प्राप्त होता है, वह सैकड़ों हजारों पंक्तियों को पवित्र करने में समर्थ होता और शिवजी की सायुज्यता को प्राप्त करता है और फिर कभी जन्म-मरण के चक्र में नहीं पडता।

❁ बृहद् शिवस्वरोदय का उत्तरार्द्ध समाप्त ❁

❁ बृहद् शिवस्वरोदय सम्पूर्ण ❁

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	...	३६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	१८)
३—यजुर्वेद	...	९)
४—सामवेद	...	८)
५—वेद महाविज्ञान	...	१२)
६—शतपथ ब्राह्मण	...	१०)
७—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	...	३०)
८—उपनिषद् रहस्य	...	६)५०
९—बृहदारण्यकोपनिषद्	...	४)
१०—छान्दोग्योपनिषद्	...	४)
११—वैशेषिक दर्शन	...	५)७५
१२—न्याय दर्शन	...	५)७५
१३—सांख्य दर्शन	...	५)७५
१४—योग दर्शन	...	५)७५
१५—वेदान्त दर्शन	...	५)७५
१६—मीमांसा दर्शन	...	७)५०
१७—२० स्मृतियां २ खण्ड	...	२०)
१८—मनुस्मृति	...	६)७५
१९—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	२४)
२०—कौटिल्य अर्थशास्त्र	...	१२)
२१—ब्रह्म सूत्र	...	१०)
२२—गृह्य सूत्र संग्रह	...	१०)
२३—पञ्चदशी	...	१२)७५
२४—विचार सागर	...	११)
२५—विचार चंद्रोदय	...	२)
२६—पञ्चीकरण	...	३)५०
२७—उपदेश साहस्री	...	५)७५
२८—वृत्ति प्रभाकर	...	७)५०
२९—सौन्दर्य लहरी	...	४)७५

प्रकाशकः-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर,
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.